है। पहिले कुछ परिणमन था, अब कुछ अन्य परिणमन हो रहा है। तो यह यों काल भेद नजर आ रहा है तो उससे सिद्ध है कि पदार्थ क्षणिक है। यदि पदार्थको कथंचित् क्षणिक न माना जाय तो फिर बुद्धि अन्य पदार्थमे लग नहीं सकती यह दोष आता है, जैसे कि यहाँ देखा जा रहा है कि हम आप लोग बहुत कुछ अन्य जान रहे थे, उसके बाद अब कुछ अन्य पदार्थ जाना जा रहा है। तो ज्ञान पहिले किसी पदार्थमे था, अब किसी अन्य पदार्थमे हो गया। तो ऐसा जो परिणमन हुआ, वह यह सिद्ध करता है कि हम आप कथंचित् क्षणिक हैं अर्थात् पहिले किसी अन्य पर्यायरूपमे थे अब किसी अन्य पर्यायरूपसे हैं। इसमे यह सिद्ध होता है कि पदार्थ कथंचित् क्षणिक है।

प्रभुशासनकी निर्बाधता तथा द्रव्यापेक्षया नित्यत्वकी सिद्धिका समर्थन— हे प्रभो! हे वीतराग! हे सर्वज्ञ अरहंतदेव! आप ऐसे स्याद्वाद न्यायके नायक हैं कि जिनके शासनमे समस्त पदार्थ यथास्वरूप दृष्टिमे आते है। इस स्याद्वाद पद्धतिसे ही आपके शासनमें यह समझा गया है कि पदार्थ कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। तो समस्त जीवादिक तत्त्व इस कारण नित्य हैं कि वे प्रत्यभिज्ञायमान हो रहे हैं अर्थात् प्रत्यभिज्ञानके विषयभूत हो रहे हैं और वह प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् नहीं हुआ है। जानने वाला भी बिना विच्छेदके पहिलेसे अब तक है और जिस पदार्थको जाना जा रहा है वह पदार्थ भी पहिलेसे अब तक बिना विच्छेदके है। प्रत्यभिज्ञान यदि अकस्मात् होने लगे, बिना कारणके हो जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह निर्विषय रहा और ऐसा प्रत्यभिज्ञान कोई समीचीन नही हो सकता। याने जिस वस्तु को जाना जा रहा है उस वस्तुमे विच्छेद हो, अन्तरालमें कुछ न हो रहा हो, और फिर उसे समझा गया। यो कहा जाय तो वह प्रलापमात्र है। यो तो उसका कुछ विषय ही न रहा, पदार्थ ही न रहा। तो प्रत्यभिज्ञान इस तरह नही हुआ करता है। प्रत्यभिज्ञान होता ही उस पदार्थके सम्बन्धमे है जिसके सम्बन्धमे नित्यताका अनुभव हो रहा हो। और भी देखिये! यह पदार्थ नित्य है यह प्रत्यभिज्ञान भ्रान्त नहीं है, जैसे कि कभी उस पदार्थके समान अन्य पदार्थ दृष्टिमे आये हो और उसके सम्बन्धमें यह ज्ञान कर लिया जाय कि यह वही है, तो यह भ्रान्त प्रत्यभिज्ञान है। जैसे कि कोई दो बालक एक साथ उत्पन्न हुए हैं और प्राय वे एक ही शकलके हैं, एकका नाम चैत्र रख दिया, एकका नाम मैत्र रख दिया। अब हो तो सामने मैत्र और ज्ञान यह किया जा रहा हो कि यह वही चैत्र है तो यह भ्रान्त हो जाता है। अथवा हो तो वही चैत्र और उसमें यह ज्ञान किया जा रहा हो कि यह तो चैत्रकी तरह है तो यह भी भ्रान्त ज्ञान हो गया। लेकिन ऐसा भ्रम यहा जीवादिक तत्त्वोंके सम्बन्धमें नहीं होरहा है। यहाँ जो प्रत्यभिज्ञान हो रहा वह यथार्थ है क्योंकि इन जीवादिक तत्त्वोका प्रत्यभिज्ञान किए जानेमें कोई बाधक प्रमाण नहीं हो रहा और इस ही कारण उसका अविच्छेद रूपसे अनुभव हो रहा है।

प्रत्यभिज्ञान विषयकी अबाधितता शङ्काकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञान का जो विषय बता रहे हो और उसमे कह रहे कि बाधक प्रमाण कोई नही आता सो यो यथार्थ नही है क्यो कि वहाँ बाधक प्रमाण प्रत्यक्ष है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणसे उस अविच्छेदमे बाधा आ रही है। प्रत्यक्ष ज्ञान देख रहा है जिसे सो ही है। पहिले रहा आगा हो यह प्रत्यक्षसे नही समझा जा रहा अतएव बाधक प्रमाण है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण तो केवल वर्तमान पर्यायात्मक वस्तुको ही विषय करता है। उसका ही नही है यह कि वह अतीतकाल या बीचके अन्तरकालकी बातको समझ सके तो चूंकि प्रत्यक्ष प्रमाण केवल वतमान पर्यायात्मक वस्तुको ही विषय करता है, अत. प्रत्यक्षका वह विषय ही नही है, फिर वह प्रत्यक्ष बाधा क्या डालेगा ? प्रत्यभिज्ञानका विषय तो पूर्व और उत्तर पर्यायमे रहने वाला एकत्व भाव है। उसमे प्रत्यक्ष प्रमाणकी प्रवृत्ति नही होती। ऐसा भी नही कह सकते कि स्वयका जो अविषय है उसमे कोई बाधक प्रमाण बन जाय या साधक क्योकि जब वह अतीत काल और अन्य काल प्रत्यक्षका विषय नही है तो उस सम्बन्धमे प्रत्यक्षको न बाधक कह सकते न साधक कह सकते। जिसका जो विषय नही है उसको उसका बाधक या साधक यदि बना दिया जाय तो श्रोत्रज्ञानका विषय है शब्द लेकिन उस शब्दका चक्षुसे अथवा नासिका आदिक इन्द्रियसे जो जाना गया है वह ज्ञान भी साधक या बाधक बन बैठे। तो जैसे श्रोत्रज्ञानके विषयमे नेत्रज्ञान न साधक है न बाधक है इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्रत्यभिज्ञानके विषयमे न बाधक बन सकते हैं और न साधक बन सकते है और इस ही प्रकार प्रत्यभिज्ञानके विषयमे अनुमान भी बाधक नही हो सकता क्योकि अनुमान प्रमाणको तो केवल अन्यापोहको ही विषय करने वाला माना है। उसका विषय ही नही है कि अतीतकाल अथवा वर्तमान कालके तत्त्वको विषय कर सके तब अनुमान भी न साधक रहा और न बाधक। अतएव प्रत्यभिज्ञानके विषयमे न प्रत्यक्ष से बाधा आती है और न अनुमानसे। जब प्रत्यभिज्ञान समीचीन सिद्ध हो जाता है तो उससे यह सिद्ध हुआ कि जीवादिक वस्तुवें कथञ्चित् नित्य ही हैं। क्षणिकवादियोने अनुमान प्रमाणके अतिरिक्त कोई भी अन्य प्रमाण परोक्ष नही माना है अर्थात् क्षणिक वादियोके सिद्धान्तमे दो ही प्रमाण बताये गए हैं एक तो प्रत्यक्ष और दूसरा अनुमान। प्रत्यक्ष तो प्रत्यक्ष है ही। अनुमान प्रमाण परोक्ष है। तो परोक्ष प्रमाणमे केवल एक ही प्रमाण रह गया क्षणिकवादमे, वह है अनुमान। तो प्रत्यक्षसे भी प्रत्यभिज्ञानमे बाधा नही आती। और अनुमानसे भी प्रत्यभिज्ञानमे बाधा नही आती। और, इसके सिवाय कोई तीसरा प्रमाण क्षणिकवादमे नही है। तब यो समझना चाहिए कि प्रत्यभिज्ञानका बाधक कोई प्रमाण नही है।

जीवादिक पदार्थोंमे एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी अभ्रान्तता अब क्षणिकवादी यह कहते हैं कि सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके द्वारा एकत्व प्रत्यभिज्ञान बाधा जाता है

किन्तु उनकी यह बात मिथ्या है। यहाँ तो उन्हें यह मानना चाहिए कि मिथ्या प्रत्यभिज्ञानका बाधक सत्य प्रत्यभिज्ञान ही है। क्षणिकवादी सादृश्यको तो स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाते हैं जैसे कि यहाँ कोई यह कहे कि यह वही देवदत्त है तो इस एकत्व प्रत्यभिज्ञानके बजाय सादृश्य प्रत्यभिज्ञान माननेको तैयार हो जाते हैं, अर्थात् सदृश नवीन नवीन पदार्थ ज्ञानक्षण उत्पन्न होते हैं ना, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान द्वारा एकत्वप्रत्यभिज्ञान बाधा जाता है, ऐसा कहते हैं ये किन्तु सत्य यह है कि यहाँ सदृश प्रत्यभिज्ञान तो झूठा प्रत्यभिज्ञान है और एकत्वप्रत्यभिज्ञान सत्य प्रत्यभिज्ञान है। फिर बात वहीं यह ही बनती है कि मिथ्या ज्ञानका बाधक सत्य प्रत्यभिज्ञान है। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि सच्चा तो सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है और औपाधिक जिसके बारे में एकत्व प्रत्यभिज्ञान बनता है लोगोंको जैसे कि यह वही जीव है यह अनादि काल की अविद्याके उदयसे बनती है बात। सो यह वही जीव है ऐसा एकत्व मानना भ्रान्त है और उस भ्रान्त ज्ञानका बाधक है सादृश्य प्रत्यभिज्ञान। अतः जब जीव एक है ही नहीं तो उसे नित्य न कहा जा सकेगा, क्षणिक ही कहना चाहिए। इस शङ्काके उत्तर मे कहते हैं कि शङ्काकारकी यह कल्पना भ्रान्तिपूर्ण है एकत्व प्रत्यभिज्ञान भ्रान्त नहीं होता। समीचीन है यह बात कि विवक्षित यह जीव वही है जो पहिले था सो ही अब है। एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे किसी भी प्रकारका भ्रम नहीं है, और क्षणिकवादियोंने जो सदृश नये नये पदार्थोंकी उत्पत्ति मानी है वह मिथ्या है। उसका निश्चय नहीं कर सकते। क्षणिकवाद सिद्धान्तमे इस प्रश्नका कि जीव क्यों वही मालूम पड़ता है, तो उत्तर यह देते हैं कि जीव तो नये नये समयमे नया नया उत्पन्न होता है, और उत्पन्न होते ही उस समयमे नष्ट हो जाता है, किन्तु वे सब जीव समान समान उत्पन्न होते हैं। जैसे एक मनुष्य देहमे जितने ज्ञानक्षण उत्पन्न होते हैं वे सब एक समान हुए, अतएव लोगोंको यह भ्रम हो जाता है कि जीव वही एक है। ऐसा कहकर सिद्ध यह करते हैं क्षणिकवादी कि वहाँ सदृश सदृश नये नये जीवकी उत्पत्ति हुई। लेकिन यह बात प्रमाणसिद्ध नहीं है। प्रकृत विषयमें एकत्व प्रत्यभिज्ञान समीचीन ज्ञान है और उस प्रत्यभिज्ञानके द्वारा पदार्थकी कथञ्चित् नित्यता सिद्ध होती ही है।

सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्यमें अर्थक्रियाकी अनुपपत्ति होनेसे नित्यानित्यात्मकत्वकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि देखिये! सर्व पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला एक अनुमान प्रमाण है वह इस प्रकार है कि जग में जो कुछ भी सत् है वह सब क्षणिक है सत् होने से अथवा सर्व पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि जो क्षणिक न हो, नित्य हो तो उसमे अर्थक्रिया सिद्ध नहीं हो सकती। तो नित्यमें अर्थक्रियाका न तो क्रमसे सद्भाव सिद्ध होता और न युगपत सिद्ध होता। तो नित्य पदार्थमें क्रम और युगपत दोनो ही प्रकारसे अर्थक्रियाका विरोध होनेसे सत्त्व न बन सकेगा। इस अनुमानसे सिद्ध है कि पदार्थ निरन्वय विनाशी है, अर्थात् उसके उत्तर-

क्षणमें ज़रा भी लगार नहीं रहता, ऐसा नष्ट हो जाता है। यो जीवादिक क्षणोमे एकत्वकी सिद्धि नही है, किन्तु वह सब सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका विषय ही बन सकता है। तब उस सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके द्वारा यह भ्रान्त एकत्व प्रत्यभिज्ञान बाधा हो जाता है। यो एकत्व प्रत्यभिज्ञान भ्रमपूर्ण है, इसमे किसी भी प्रकारका विवाद नही है। अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं क्षणिकवादियो की उक्त शङ्का यो युक्तिसङ्गत नही है कि नित्यत्वके विरोधमे जो अब क्षणिकवादियोने अनुमान कहा है वह अनुमान विरुद्ध पड़ता है। और वह विरुद्ध यो है कि इस अनुमान प्रयोगसे यह सिद्ध होता है कि पदार्थ कथञ्चित् नित्य है। वह अनुमान प्रयोग इस प्रकार है कि जो भी सत् है वह सब कथञ्चित् नित्य है क्योंकि सर्वथा क्षणिकमे न तो क्रमसे अर्थ क्रिया बनती है और न युगपत् अर्थक्रिया बनती है। जब दोनो ही तरहसे अर्थक्रियाका क्षणिक पक्षमे विरोध है तब सत्त्व भी सिद्ध नही हो सकता है। तो इस ही अनुमानसे पदार्थका कथञ्चित् नित्यपना सिद्ध होता है जो क्षणिकवादीका उक्त हेतु साध्यसे विरुद्ध पड़ता है। इस अनुमान प्रयोगमे जो हेतु कहा गया है कि सर्वथा क्षणिकमे क्रमसे तथा युगपत् अर्थक्रिया सम्भव नही हो सकती है। यह हेतु निर्दोष है। इस हेतुमे अनैकान्तिक दोष नही आता अनैकान्तिकदोष उसे कहते हैं जहाँ हेतु साध्यसे विपरीत पदार्थके साथ मेल रखता हो, सो यहाँ यह हेतु सर्वथा नित्यमे सम्भव नही है अर्थात् जैसे सर्वथा क्षणिकमे क्रम और युगपत् अर्थक्रिया नही बनती ऐसे ही सर्वथा नित्यमे भी अर्थक्रिया नही बनती। कथञ्चित् नित्यमे ही अर्थक्रिया सम्भव है। तो सर्वथा नित्यपना होनेपर सत्त्व ही सम्भव न होगा। जैसे कि सर्वथा क्षणिकपनामें सत्त्व सम्भव नही है। सर्वथा नित्य हो, अथवा सर्वथा अनित्य हो, वहाँ सत्त्व सम्भव नही होता, क्योकि जो सर्वथा नित्य है वहाँ क्रम और अक्रमकी उत्पत्ति ही नही सम्भव है। जो सदा एक समान रहेगा, जिसमें जरा भी परिवर्तन न होगा उसमें क्रम किसका कहा जायगा और अक्रम भी फिर क्या रहेगा? इस प्रकार सर्वथा क्षणिक हो कुछ याने क्षण क्षणमे नया नया ही पदार्थ बनता हो तो उसमें भी क्या क्रम सम्भव है और क्या अक्रम?

सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्यमे अर्थक्रिया न हो सकनेका कारण सर्वथा नित्यमे और सर्वथा क्षणिकमे क्रम और अक्रमकी उत्पत्ति नही बनती है। उसका कारण यह है कि इन दोनो ही पक्षोंमे यह बात सम्भव नही है कि पूर्व स्वभाव का कोई त्याग करदे और उत्तर स्वभावको ग्रहण करे। यो पूर्व स्वभावका त्याग होने पर और उत्तर स्वभावका ग्रहण होनेपर भी दोनोमे अन्वयरूप बना रहे यह बात सर्वथा नित्यमे तो यो सम्भव नही कि वहाँ स्वभावका त्याग और ग्रहण नही बन सकता। यदि स्वभावका त्याग और ग्रहण बनाया जाने लगे तो वह सर्वथा नित्य न रह सकेगा क्योकि कुछ स्वभाव मिटा कुछ स्वभाव नया आया तो नित्यपन कहाँ रहा? वहाँ तो परिवर्तन हो गया, तथा सर्वथा क्षणिकमे यह बात यो नही बनती कि

वहाँ तो प्रतिसमयमें न या नया ही पदार्थ है, फिर उनमें अन्वयरूप कैसे सम्भव है। तो जब पूर्व स्वभावका त्याग उत्तर स्वभावका ग्रहण और दोनोंमें स्थितिका अन्वय रहना, जब ये बातें न बन ही तो एक साथ अनेक शक्तियोंसे युक्त रहे पदार्थ यह भी सम्भव नहीं हो सकता देखिये! जहाँ सर्वथा कूटस्थपन है, जहाँ रंच भी परिवर्तन नहीं है, ऐसे पदार्थमें पूर्वस्वभावका त्याग और उत्तर स्वभावका ग्रहण नहीं बनता क्योंकि वह तो सदा एक समान है। व परिवर्तन कहाँसे होगा? सर्वथा क्षणिकमें अन्वित रूप नहीं है, अर्थात् जो एक पूर्वापर समयोंमें रहने वाले पदार्थोंमें रहे ऐसा कुछ सम्भव नहीं होता इसी कारण सर्वथा नित्यमें व सर्वथा अनित्यमें कालकृत और देशकृत किसी भी प्रकारका क्रम सम्भव नहीं होता और न एक साथ अनेक स्वभाव भी उनमें सिद्ध हो सकते हैं जिससे कि युगपद अर्थक्रिया मानी जा सके। यदि एक साथ अनेक स्वभाव मान लिए जायें तो फिर कूटस्थपना नहीं रहता। जो पदार्थ अनेक स्वभाव वाला है तो विभिन्नता आयगी फिर उसमें अपरिणामी एकता कैसे रही? इसी प्रकार यदि एक साथ अनेक स्वभाव मान लिए जायें तो वहाँ निरन्वय क्षणिकपना न रहेगा, जब अनेक स्वभाव है तो उन स्वभावोंमें रहने वाला कोई एक तत्त्व तो मानना पड़ेगा जिसके सहारे अनेक स्वभाव सम्भव किये जा सकें। तो यों सर्वथा नित्यमें और सर्वथा अनित्यमें एक साथ अनेक स्वभावपना भी सम्भव नहीं होता अतः यह हेतु बिल्कुल सही है कि सर्वथा क्षणिकमें क्रमसे और युगपत दोनों ही प्रकारसे अर्थक्रिया नहीं बनती, अतः पदार्थ सर्वथा क्षणिक नहीं है किन्तु कथञ्चित् नित्य है और कथञ्चित् अनित्य है।

सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्यमें क्रमसे या युगपत् कार्य सिद्ध करनेके लिये सहकारीके क्रमकी अपेक्षा कल्पनाकी असङ्गतता

यदि शङ्काकार यहाँ ऐसी कल्पना करे कि सहकारी कारणमें क्रमकी अपेक्षासे होना और एक साथ अर्थक्रिया होना ये दोनों बातें सम्भव हो जायेंगी सो यह बात सम्भव नहीं हो सकती, क्योंकि यदि सहकारी कारणोंके क्रम अक्रमकी अपेक्षासे मे क्रम और युगपत्की कल्पना की जाय तो पदार्थमें तो कुछ बात न घटी, स्वय और क्षणिक पदार्थमें तो सहकारी अपेक्षा आयगी, तब क्षणिक और नित्य कैसे रहेंगे? क्योंकि क्रम और अक्रमका स्वभाव न माननेपर क्रमसे या युगपत् क्रिया नहीं मानी जा सकती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन कार्योंमें कारणोंकी अपेक्षा बन जायगी। नित्य पदार्थ और क्षणिक पदार्थमें सहकारी की अपेक्षा हम नहीं मानते सो यह कहना भी सङ्गत नहीं है, क्योंकि यदि सहकारी कारणोंकी अपेक्षा स्वीकार की जाय तब पदार्थका वह कार्य न वह कार्य खुद कार्य न कहला सकेगा। शङ्काकार कहता है कि नित्य पदार्थ क्षणिक पदार्थसे सहित जो सहकारी कारण है उससे अर्थ उत्पन्न होता है नाना

नित्यताका खण्डन कर सके।

प्रत्यभिज्ञायमान व प्रत्यभिज्ञाताकी नित्यानित्यात्मकताकी सिद्धि—अनादिसे अनन्तकाल तक सत् एक ही रहता है इसको भ्रान्त बतायें; यह व न प्रमाण सिद्ध है कि जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल, सभी पदार्थ कथञ्चित् नित्य हैं क्योंकि उनके सम्बन्धमें एकत्व प्रत्यभिज्ञान बनता है और ऐसा समझने वाला कोई मनुष्य जीव भी द्रव्य अपेक्षासे नित्य है तब ही तो वह प्रत्यभिज्ञान कर रहा है। जिस पुरुषने पहिले कुछ देखा हो, अनुभव किया हो वही पुरुष तो प्रत्यभिज्ञान कर सकेगा कि जिसे मैंने देखा था उसे ही अब मैं देख रहा हूं। तो जिसके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञान हो रहा है वह पदार्थ भी नित्य होना चाहिए और जो प्रत्यभिज्ञान कर रहा है वह पुरुष भी नित्य होना चाहिए तब यह एकत्वका व्यवहार बन सकता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ कथञ्चित् नित्य है और कथञ्चित् अनित्य है।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणकी सिद्धि—अब यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञान कोई एक प्रमाण नहीं है क्योंकि प्रत्यभिज्ञानमें दो प्रकारके उल्लेख हैं। तत् और इदं याने यह वह है तो इसमें "वह से" इस प्रकारका ज्ञान तो स्मरण रूप है अर्थात् वही है इस प्रकारके ज्ञानमें स्मरणकी बात आयी और "यह है" इस शब्द के उल्लेखमें प्रत्यक्षपनेकी बात आयी। तो यह वही है इस प्रकारके बोधमें प्रत्यक्ष और स्मरण दो प्रकारके ज्ञान हुए और इन दो प्रकारके ज्ञानोंसे अतिरिक्त कोई दूसरा ज्ञान है नहीं जो किसी एकत्वका विषय किया करे। इन दो ज्ञानोंमें एक ज्ञान तो अतीत कालके विषयको जानता है दूसरा ज्ञान वर्तमान समयके विषयको जानता है। तो अतीतको जानने वाला हुआ स्मरण और वर्तमानको जानने वाला हुआ प्रत्यक्ष तो इन दो ज्ञानोंसे अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान नहीं पाया जाता जिसको कि प्रत्यभिज्ञान नाम दिया जाय। एक प्रमाण अलग माना जाय और वह नित्यपनेको सिद्ध करे। इसके लिये जो जीवादिक पदार्थोंको नित्य सिद्ध करनेके लिये, प्रत्यभिज्ञान नामक हेतु दिया है, वह हेतु स्वरूपासिद्ध है। इस प्रकार क्षणिकवादी यहाँ प्रत्यभिज्ञान नामक हेतुको सदोष बता रहे हैं। अब उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि पदार्थकी नित्यताका अपलाप करने वाला शङ्काकार प्रतीतिका ही विरोध कर रहा है। देखिये ! पूर्व और उत्तर कालकी पर्यायोंका स्मरण और दर्शन जो हुआ है उन दोनों ज्ञानोंके माध्यमसे उत्पन्न हुआ है यह एकत्वका संकलन करने वाला ज्ञान। उस हीका नाम एकत्व प्रत्यभिज्ञान है अर्थात् जो पदार्थ स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषयभूत हुआ है, उन दोनोंमें एकत्वकी बात जो बताई उसका नाम है प्रत्यभिज्ञान। ऐसा प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण सभी जीवोंको अपने अनुभवमें आ रहा है। इस कारण वह भली भाँति प्रतीतिसिद्ध है। केवल स्मरणज्ञान पूर्व और उत्तर कालकी पर्यायोंमें एकत्वका संकलन करनेके लिए समर्थ नहीं है। इसी प्रकार केवल प्रत्यभिज्ञान, निराकार दर्शन भी पूर्व

और उत्तरकालकी पर्यायोमे रहने वाले एकत्वको जान नहीं सकता । अतः स्मरण और प्रत्यक्ष ज्ञानसे जाने हुए विषयमे एकत्वका ज्ञान करने वाला प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण मानना ही पडेगा । यहाँ शङ्काकार कहता है कि पूर्व और उत्तर पर्यायोमे रहने वाले एकत्वको यह विकल्प ज्ञान समझ लेगा जो विकल्प ज्ञान स्मरण और प्रत्यक्षके संस्कारसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् स्मरण और प्रत्यक्ष ज्ञानसे जो समझा और उसका जो सस्कार बना उसके द्वारा जो विकल्प ज्ञान बना वह विकल्प ज्ञान उस एकत्वका परिचय कर लेगा । इस शङ्का के उत्तरमे कहते हैं कि यदि शङ्काकारकी यही मशा है कि स्मरण ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञानके सस्कारसे उत्पन्न हुआ विकल्प ज्ञान एकत्वको जान लेगा तो बस सही तो हो गया । इस ही का नाम प्रत्यभिज्ञान है । जो स्मरण और प्रत्यभिज्ञानके सस्कारसे उत्पन्न हुए एक तत्वका सकलन है उसको जो जाने सो प्रत्यभिज्ञान है ।

प्रत्यभिज्ञानके विषयकी काल्पनिकता—प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् ही नहीं हो जाता अर्थात् कारण बिना नही होता और इसी कारण वह निर्विषय भी नही है अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कोई विषय नही होता ऐसी बात नही है क्योकि ऐसा माननेपर बुद्धिके असचरणका दोष आता है । क्योकि प्रत्यभिज्ञानका विषयभूत पूर्व उत्तर पर्याय में रहने वाला अविच्छिन्न अर्थात् निरन्तर बनने वाला नित्यपना जब नही माना जाता तो बुद्धिका गमन नही बन सकता एक पदार्थको समझकर अन्य पदार्थको जाननेके लिए बुद्धि प्रेरित नही हो सकती है । जहाँ निरन्वय विनाश माना गया है अर्थात् पदार्थ इस तरह नष्ट होता है कि उसका अन्वय ही नही रहता ऐसी स्थितिमे अन्यमे बुद्धिकी गति नही बन सकती है । और तब बुद्धिका गमन बन नही सकता जैसा कि लोकमे पाया जा रहा है । जिसको ही मैंने देखा था उसे ही मैं यहाँ छू रहा हूं, समझ रहा हू । इस प्रकार जो पूर्व और उत्तर पर्यायोमे एक द्रव्यात्मक रूपसे बुद्धिका गमन चल रहा है वह गमन निरन्वय विनाशमे नही हो सकता है । क्योकि जब विषय ही कुछ न रहा और अन्य कालमे एकत्व माना नही जा रहा है तो अब किस विषयमें ये अपनी बुद्धि ले जायेंगे ? जिससे कि यह बोध हो जाय कि यह वही पुरुष है जिसे हमने पहिले देखा था । यहाँ शङ्काकार कहता है कि यद्यपि नित्यत्व नही है और ऐसी स्थितिमे प्रत्यभिज्ञान रूप बुद्धिका सचरण भी नही हो रहा है तो भी अन्य बुद्धिका तो संचरण हो ही जायगा । इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि उस बुद्धिसे अतिरिक्त अन्य किस बुद्धिका संचरण हो उसका यहाँ प्रकरण ही नहीं है । नित्यत्वकी सिद्धि करनेके प्रस्तावमे तो उसी विषयमे बुद्धिकी बात कही जा सकती है, यह बात कही जा रही है । यदि शङ्काकार कहे कि उस प्रकारके एकत्वकी वासना है उसके कारण बुद्धिका संचरण हो जायगा, पर कथञ्चित् नित्य है इस वजहसे अन्य विषयमें अपनी बुद्धिका पहुचाना हो सो बात न बन सकेगी । वह तो अज्ञान बुद्धिकी वासनासे हो

जावेगा। तो इसके उत्तरमे सुनो ! कथञ्चित् नित्यत्व जब नहीं माना जा रहा है तो ऐसी स्थितिमे उस सम्वेदनमे अथवा वासनामें जो बोध होता है कि यह तो वासना करने वाला है और इस विषयकी वासना बन रही है तो विषयकी वासना बने उसका नाम तो है वास्य और वासना करने वाला जो पुरुष है उसका नाम है वासक। तो यों वास्य-वासक भाव फिर उन ज्ञानोमे बन ही नहीं सकता क्योंकि कथञ्चित् नित्यपना ही जब नहीं माना जा रहा तो किसी वासनाको बनाकर। तो अब वास्य-वासक भाव न बना तो वासना भी न बनी। तब कार्य कारणभाव भी न बन सकेगा। शङ्काकार यदि ऐसा कहे कि जो बुद्धिका कारणभूत है वही वासक कहलाता है अथवा कहें कि कथंचित् नित्य न मानेंगे तो वास्य-वासक भाव क्या न बनेगा ? तो सुनो ! जब कथंचित् नित्यपना नहीं माना गया तो वहाँ कार्य-कारण भाव नहीं बन सकता और उस स्थितिमे वास्य-वासक भाव भी नहीं बन सकता। इस कारण यह मानना होगा कि प्रत्यभिज्ञान आकस्मिक नहीं होती अर्थात् कारण और विषयके बिना प्रत्यभिज्ञान नहीं होता। प्रत्यभिज्ञान है तो प्रत्यभिज्ञान करने वाला भी कथंचित् नित्य सिद्ध हो जाता है। और, जिस विषयमें प्रत्यभिज्ञान किया जा रहा है, वह भी कथंचित् नित्य सिद्ध होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो बुद्धि उस विषयमे लग नहीं सकती। अतः मानना होगा कि प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण प्रमाणसिद्ध है। उसका किसी तरह विच्छेद नहीं होता। तो कथंचित् नित्य है वस्तु यह बात सिद्ध हो जाती है।

प्रत्यभिज्ञायमानता होनेसे वस्तुकी नित्यानित्यात्मकताकी सिद्धि— उक्त सब कथनका सारांश यह निकला कि जीवादिक सब पदार्थ कथञ्चित् नित्य हैं क्योंकि प्रत्यभिज्ञान होता है और उसी प्रकार यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जीव आदिक समस्त पदार्थ कथंचित् क्षणिक हैं क्योंकि प्रत्यभिज्ञान बनता है। यदि वस्तु को सर्वथा क्षणिक माना जाय अर्थात् उसका अन्वय ही नहीं चलता अनेक कालोमें अपने समयमें उत्पन्न हुई और उन ही समयमें वस्तु नष्ट हो गई, ऐसा माननेमें प्रत्यभिज्ञान नहीं बनता। इसी प्रकार यदि वस्तुका सर्वथा नित्य अपरिणामी माना जाय तो इस स्थितिमें भी प्रत्यभिज्ञान नहीं बनता है। यह प्रत्यभिज्ञान कथंचित् क्षणिकत्वके बिना भी नहीं बनता। अत यह भी बिना कारणके नहीं होता। प्रत्यभिज्ञानका जो विषय है वह कथंचित् क्षणिक है और तभी उसमे यह बात कही जाती है कि वहाँ विच्छेदका अभाव है। उसका विच्छेद नहीं होता, यह बात असत्य नहीं है। वहाँ काल भेद पाया जा रहा है। पूर्व और उत्तरकी पर्यायें हुआ करती हैं। और उन पर्यायोमें रहने वाला कोई ध्रुव तत्त्व है। पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायकी प्रवृत्तिका कारणभूत कालभेद यदि न माना जाय तो वहाँ भी प्रत्यभिज्ञान रूप बुद्धि चल नहीं सकती। यदि स्मरण और दर्शन ये ज्ञान न हों तो प्रत्यभिज्ञान तो नहीं बन सकता। प्रत्यभिज्ञान तब ही बनता है जब पहिले ये दो बुद्धियाँ जगती हैं कि यह वह है। स्मरणज्ञान

द्वारा तो पदार्थके सर्वथा क्षणिकपनेका निराकरण किया था कथञ्चित् क्षणिक पदार्थ में तो अपने विवक्षित सत्त्वके कालमें और अपने विवक्षित पर्यायके असत्त्वके कालमें अर्थक्रिया पायी जाती है। जैसे कि स्वर्ण नामका पदार्थ है तो वह किसी विशिष्ट आकार हो किसी भी आकारसे हो कभी पिण्डरूपमें है कभी आभूषणरूपमें है, तो किसी भी आकाररूप वह स्वर्ण रहे लेकिन वह तो सदाकाल स्वर्ण द्रव्यरूपसे सत् ही है और कार्यके आकाररूपसे असत् ही है। जैसे कि किसी स्वर्ण से उसीमें कोई आभूषण बनाता है तो आभूषणके रूपमें असत् है किन्तु स्वर्णत्वके रूपमें सत् है तो जो द्रव्यरूपसे सत् है कार्य आकाररूपसे असत् है उसमें भी तो यह लोगोंको प्रतीति हो रहा है कि यहाँ जो कुछ उत्पन्न हो रहा है। वहाँ अब पूर्वाकार नहीं रहती है। यह बात सभी बुद्धिमान पुरुषोंकी बुद्धिमें आ रही है। यथा क्षणिक कारणके अपने सत्त्वके समयमें कार्यका किया जाना दाहिने सींग द्वारा बायें सींगका किया जाना और उसमें अन्य याने बायें सींग द्वारा दाहिने सींगका करना जैसे नहीं बनता, उसी तरहसे सर्वथा क्षणिकवादमें भी अर्थक्रिया नहीं बनती। सो अपने आप ही सभी लोग प्रतीतिमें ला रहे हैं कि वस्तु कथञ्चित् नित्य हो और कथञ्चित् अनित्य हो तब ही उस पदार्थमें अर्थक्रिया की सिद्धि बन सकती है। तो जो प्रतीति सिद्ध है अनुभवमें उतर रही है उस बातका अपलाप किया जाय और किसी एकान्तवादका पोषण किया जाय तो यह बात चल नहीं सकती है। कथञ्चित नित्य और अनित्यके माने बिना न तो लोक व्यवहार ठहर सकता और न मोक्ष मार्गकी प्रवृत्ति ही चल सकती है अतः मानना ही चाहिए कि सर्व पदार्थ जो जो सत् हैं वे सब कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित अनित्य हैं।

नित्यत्व व अनित्यत्वके समाधानका सप्रकरण संक्षिप्त प्रकाश — यहाँ शङ्काकारकी शङ्काका यह अभिप्राय था कि पदार्थको क्षणिक माननेपर अर्थक्रिया नहीं बन पाती इस कारण पदार्थको कूटस्थ नित्य अपरिणामी मानना चाहिए। क्षणिक माननेपर अर्थक्रिया नहीं बनती, इसका हेतु शङ्काकारने यह दिया था कि कारण जब क्षणिक हो गया तो जिस समय कार्य होनेका समय है उस समय तो कारण है नहीं वह कैसे कार्यको पैदा कर देगा और जिस समय कार्य नहीं है तो कारणके सत्त्व समयमें कार्य माना नहीं गया है। दूसरी बात यह है कि कारण भी और कार्य भी दोनों एक समयमें माने जायें तो जैसे बछड़ेके दाहिने बायें सींगमें कार्य कारण भाव नहीं बनता, क्योंकि वे एक साथ ही हैं। इस तरह कारण और कार्य यदि एक साथ हों तब भी कार्य कारण भाव नहीं बनता। यों कार्यके सद्भावके समय में और कार्यके असद्भावके समयमें क्षणिक कारणको माननेका विरोध है इसी प्रकार पदार्थको क्षणिक माननेपर कार्य कारण भाव नहीं बनता। यह बताने पर यहाँ यह अपरिणामवादी शङ्काकार यह समर्थन कर रहा है कि फिर तो पदार्थको सर्वथा-

कूटस्थ नित्य मानना ही चाहिए। इसी शंकाके समाधानमे कहा गया है कि स्याद्वाद सिद्धान्तमे पदार्थको सर्वथा क्षणिक नही माना गया है और ऐसी स्थितिमे कार्य-कारण भाव सिद्ध हो जाता है। वह इस प्रकार कि जैसे स्वर्णसे कोई आभूषण बनाया जा रहा है तो वह स्वर्ण द्रव्यरूपसे तो है ही और आभूषणके रूपसे नही है। तो कथंचित् कार्य है और नही है। चू कि उस कार्यका आधारभूत द्रव्य मौजूद है अतः कह सकते हैं कि कथंचित् सत् है और वह परिणमन उस समय नही है। इस कारण कह सकते हैं कि वह कथञ्चित् असत् है। तो यो कथंचित् सत् और असत्मे कार्यपना सम्भव हो जाता है। हाँ स्व जो क्षणिक कारण है उसके सद्भावके समयमे कार्यको किये जानेका निराकरण जो किया गया दार्य बाये सीधमें परस्परमे कार्य कारण भावका जो निराकरण किया है उसको तुलनाकर निराकरण किया है सो सर्वथा क्षणिक पनेमे किया जा सकता है। पर कथञ्चित क्षणिक पक्षमे नही किया जा सकता इसी प्रकार जो दूसरी बात शङ्काकारने कही थी कि क्षणिक कारणके असद्भावके समयमे कार्यकी व्यवस्था नही बन सकती। जैसे कोई मयूर मर चुका अब वह कूक शब्द कैसे बोल सकेगा ? अब मरा हुआ मयूर तो अर्थ क्रिया नही कर सकता। तो इसी प्रकार जब कारण क्षण नष्ट हो गया तो नष्ट हुआ कारण अब कार्यकी व्यवस्था कैसे बनायेगा ? यह उपालम्भ भी सर्वथा क्षणिक पक्षमे दिया जा सकता है किन्तु कथञ्चित् क्षणिकत्व के मन्तव्यमे यह उपालम्भ नही दिया जा सकता यो प्रतीतिके बलपर ही जब स्वरूप की व्यवस्था बन गई तब फिर स्याद्वाद सिद्धान्तमे चिन्ता ही क्या है ? प्रतीति जो कुछ लोगोको हो रही है वही विरोध आदिक दूषणोको दूर कर देती हैं। जैसे कि शङ्काकार अपने कारण कार्यके समयमे अपने असत्त्व समयमे कार्य कारणका विरोध बता रहा था वह विरोध प्रतीतिसे दूर हो ही जाता है। सभी जीवोंको यह प्रतीति बन रही है कि स्वर्णरूपसे वह पदार्थ पहिले भी है पश्चात् भी है लेकिन आभूषणरूप मे सद्भाव पहिले नही है पश्चात् हुआ है। तो कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य मानने वाले सिद्धान्तमे विरोध आदिक दूषण नही आते।

स्वसत्त्व समय स्वासत्त्वसमयके उपालम्भकी कथंचित् क्षणिकत्वमें असम्भवता—अहो, आश्चर्यकी बात देखिये ! कि शङ्का करने वाला यह अपरिणामित्ववादी साख्य अथवा नैयायिक अपना सिद्धान्त यो मान रहा है कि आत्मा आदिक पदार्थ सदा सत् रहा करते हैं, तो उनका तो सद्भावका काल रहा ना सदा और कर्मादिकका असद्भाव है अर्थात् जिस समय ये शङ्काकार यह कहते हैं कि आत्मामे ज्ञानका संयोग हुआ और उसमे यह आत्मा ज्ञानी कहलाता। ज्ञान तो है अन्य गुण नैयायिक सिद्धान्त में और साख्य सिद्धान्तमें ज्ञान है प्रधानका धर्म तो अब आत्मा तो जुदा रहा, ज्ञान जुदा रहा लेकिन आत्मा ज्ञानी है ऐसी सबको प्रतीति हो रही है, तो वहाँ उनका यह कहना है कि आत्मामें ज्ञानका संयोग होता है। तो आत्मामे ज्ञानका संयोग बने इसका

कारण क्या ? इसका जो भी कारण हो वह कर्मादिक ही तो है। तो आत्मा तो सदा सद्भाव है और कर्मादिक अपने असमय समयमें है, अर्थात् जब ज्ञानका संयोग नहीं है वहां हो तो कर्मप्रवृत्ति हो रही है। जैसे कर्मवृत्तिके द्वारा ज्ञानका संयोग उन तो जिस समय ज्ञान संयोग नहीं है उस समय कर्मवृत्ति चल रही है। तो अब कर्मवृत्ति असत्त्व समयमें हुई और फिर भी अपने सद्भावके समय और असद्भावके समयमें उनको ज्ञान संयोगका कारण मान रहे हैं और यहां यह बतला रहे हैं कि अपने सद्भावके समय और अभावके समयमें कोई कार्य नहीं बन सकता। तो भला बतलाओ कि यह सम्यग्ज्ञान देने वाला पण्डित कैसे रहा ? स्वयंके लिए तो मान लेवें कि हां सत्त्व और असत्त्व दोनो ही स्थितियोंमें अर्थक्रिया बनती है और यहां निषेध करें तो वह कैसे बुद्धिमान कहा जा सकता है ? हां सर्वथा क्षणिकमें अर्थक्रियाका विरोध बताया जा सकता सो इसी प्रकार सर्वथा नित्यमें भी अर्थक्रियाका विरोध है। सभी वर्गोंको यह प्रतीति हो रही है कि किसी दृष्टिसे सत्त्व हुआ किसी दृष्टिसे असत्त्व हुआ ऐसे सम मे उपादान कार्य करने वाला होता है। ऐसी प्रतीति होनेपर भी यदि किसी जगह उन कार्य कारणोंका विरोध किया जा रहा है तो वे कैसे वस्तुमें कार्य कारणका अविरोध समझ पायेंगे ?

द्रव्य व पर्यायमें भेदैकान्तकी दुराशंका का निराकरण—यहां शङ्काकार कहता है कि द्रव्य और पर्यायमें तो एकान्ततः भेद है द्रव्य अन्य वस्तु है, पर्याय अन्य वस्तु है फिर कैसे इनका अपना सद्भाव और असद्भावके समयमें कार्यका करना बन जाता है यह कहा जा रहा है। नैयायिक सिद्धान्तमें भी द्रव्य गुण कर्म आदिकको पृथक पृथक माना गया है और सांख्य सिद्धान्तमें भी प्रधान और पुरुषको पृथक पृथक माना है। तो यों जब भेदैकान्त हो गया द्रव्य और पर्यायमें तो वहां यह बात कैसे बन सकेगी कि यह घटाया जाय कि किसी दृष्टिसे सत्त्व है उपादानका, किसी दृष्टिसे असत्त्व है कार्यका और फिर वहां कार्यका करना बनाया जाय यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ये शङ्काकार जो द्रव्य और पर्यायमें भेदैकान्त की बात कह रहे हैं सो अनुभव तो ये खुद भी कर रहे हैं कि द्रव्य और पर्यायमें अभेद है। स्वयं अनुभव भी कर रहे हैं कि यह मैं शाश्वत हूं और मुझमें ही तादात्म्यरूपसे ये सब परिणमन क्रियायें चल रही हैं किन्तु अपने सिद्धान्तके व्यामोहमात्रसे परिभाषण करते जाते हैं प्रतीतिसे उल्टा तो इसमें सिवाय एक अपने सिद्धान्त पक्षके आग्रहके अन्य और क्या कारण कहा जा सकता है ? तो यहां तक यह बात सिद्ध की गई कि प्रत्यभिज्ञान होनेसे सर्वथा क्षणिकत्वका निषेध हुआ और इसीसे व कालभेद होनेसे याने परिणमन भेद होनेसे सर्वथा नित्यत्वका निषेध हुआ। तो जैसे सर्वथा नित्यत्वका निषेध करनेमें प्रत्यभिज्ञान हेतु निर्दोष सिद्ध हुआ था उसी प्रकार सर्वथा क्षणिकत्वका निराकरण करनेमें भी प्रत्यभिज्ञान हेतु निर्दोष सिद्ध होता है।

प्रत्यभिज्ञान हेतु द्वारा पदार्थके कथंचित् क्षणिकत्व व नित्यत्वकी साधनाकी निर्बाधता—कथंचित् क्षणिक है पदार्थ ऐसा सिद्ध करनेमे जो प्रत्यभिज्ञान हेतु दिया गया है वह अनुमानविरुद्ध नही है और न प्रत्यक्षविरुद्ध भी है। सभी लोग इस समयमे भी प्रत्यक्षसे ऐसा ही अनुभव कर रहे है कि पदार्थ वही है और इस समय अपनी एक अवस्थाको लिए हुए है। प्रत्यक्ष द्वारा यदि अतीत काल और अनागत काल भी अनुभवमे आने लगे तब अनादि अनन्त जितनी भी पर्यायें हुई है उन सबका अनुभव हो जाना चाहिए और फिर ये सभी लोग योगी बन बैठेंगे। प्रत्यक्षके द्वारा तो वर्तमान पर्यायका ही अनुभव हो रहा लेकिन यह वही है जो पहिले देखा था, इस प्रकारके ज्ञानमे जो एकत्वका अनुभव हो रहा है वह अतीत और वर्तमान कालसे सम्बन्धित विषयका हो रहा है। प्रत्यक्षमे यदि वह सब विषय समझ लिया जाय अर्थात् अतीत और अनागत रूपसे ही प्रत्यक्ष अनुभव करले तो बस अनादि अनन्त समस्त पर्यायोंके रूपसे अनुभव हो बैठेगा ? क्योंकि अब प्रत्यक्षमे ही ऐसी कला मान ली गई है कि वह अतीत और अनागतरूपसे भी अनुभव कर बैठे और यों फिर सभी पुरुष योगी बन जायेंगे किन्तु बात ऐसी है नही। प्रत्यक्ष प्रमाण तो वर्तमान, रूपसे ही अनुभव करता है और वर्तमानरूपसे जो अनुभव हो रहा है सो वह तो क्षणिकपनेका ही अनुभव हो रहा है। जो क्षणमात्र वस्तु है, किसी समयमे रहने वाला पदार्थ है उसमे ही वर्तमान समयपनेकी उत्पत्ति की जा सकती है। यदि पूर्वक्षण और उत्तर क्षणोंको भी वर्तमान मान लिया जाय तब तो अनादिकालमे जितने भी क्षण हुए हैं और उत्तरकालमे जितने भी अनन्त क्षण होंगे सभी वर्तमान बन बैठेंगे और ऐसी स्थितिमे तो भूत वर्तमान भविष्यत इस ही व्यवहारका लोप हो बैठेगा। सो इस कारण यह मानना चाहिए कि प्रत्यक्ष तो वर्तमान कालीन तत्त्वको विषय करता है, स्मरण अतीतकालीन तत्त्वको विषय करता है और प्रत्यभिज्ञान अतीत एवं वर्तमान कालसे सम्बन्धित अविच्छिन्नरूपसे रहने वाले किसी एकका अनुभव करता है तो यद्यपि प्रत्यक्षसे क्षणिकपनेका ही अनुभव हो रही है फिर भी कथञ्चित् नित्य है इसका विरोध नही किया जा सकता है, क्योंकि पर्यायरूपसे पदार्थका अनुभव नही होता, फिर भी द्रव्यरूपसे पदार्थका अनुभव चलता ही रहता है और पर्यायका तो विनाश हो जाता है मगर द्रव्यका विनाश नही होता। यदि द्रव्यका ही विनाश मान लिया जाय अर्थात् द्रव्यरूपसे वस्तुका अनुभव मिटा दिया जाय तब तो द्रव्य ही न रहेगा। यहाँ कोई ऐसी यदि आशंका करे कि द्रव्यत्व भी न रहे द्रव्यत्वका विरोध बना आये, क्योंकि एकान्ततः अनित्य है वस्तु ऐसी व्यवस्था बन रही है और ऐसी व्यवस्था बनते समय द्रव्यत्वका विरोध होता हो तो होने दो। तो ऐसी आशंका वस्तु स्वरूपके अनुकूल नही है, क्योंकि सदाकाल न मिटने वाले पदार्थका इस समयमे भी द्रव्यपना है और इस समयके पूर्व और उत्तर समयमे भी द्रव्यपना है अतएव अनित्यत्वके एकान्त की व्यवस्था नही बन सकती है। तो जैसे पदार्थ सर्वथा नित्य नहीं है इसी प्रकार

पदार्थ सर्वथा अनित्य भी नहीं है, इस तरह जब कथञ्चित् नित्य और अनित्य है तभी उसके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञान प्रमाणकी उत्पत्ति होती है सर्वथा नित्यमें एकान्तमें और सर्वथा क्षणिकके एकान्तमें पूर्व उत्तर पर्यायमें रहने वाले एकत्वका ज्ञान नहीं बन सकता है इससे सिद्ध है कि वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य ही है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य ही है तभी उस वस्तुके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञान प्रमाणकी उत्पत्ति होती है। यहाँ तक अन्य पदार्थमें प्रत्यभिज्ञानकी उपपत्ती हो रही है। इससे अन्य पदार्थकी कथञ्चित् नित्यता और अनित्यता सिद्ध की गई है।

प्रत्यभिज्ञान द्वारा प्रत्यभिज्ञाताके नित्यत्वकी सिद्धि— अब यहाँ यह सिद्ध कर रहे हैं कि जानने वाला पुरुष भी द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य है तब ही वह प्रत्यभिज्ञान प्रमाणको उत्पन्न कर रहा है। इस बातको अब सुनो ! कि जो प्रमाता पुरुष है अर्थात् जानने वाला जीव है वह यदि स्थिर न हो, नित्य न हो तो उसकी स्थितिके अभाव मान लेने पर फिर प्रत्यभिज्ञान कर नहीं सकता। जैसे कि दूसरेके द्वारा देखे गए पदार्थको अन्य कोई दूसरा पुरुष प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे जान नहीं सकता। जैसे पिताने जो कुछ देखा था उसका प्रत्यभिज्ञान पुत्र तो नहीं कर सकता। जैसे पिताने ८—६ वर्षकी उम्रमें ही कुछ देखा था तब तो पुत्र उत्पन्न ही न था। अब १० वर्ष बाद क्या कोई पुत्र पिताकी देखी हुई बातका प्रत्यभिज्ञान कर लेगा ? तथा पुत्र हुए बाद भी पितृदृष्टिका पुत्र प्रत्यभिज्ञान कर सकता है क्या ? नहीं कर सकता। ऐसे ही अन्यके द्वारा देखे गए विषयका अन्य कोई दूसरा प्रत्यभिज्ञान नहीं कर सकता, इसी प्रकार जब सर्वथा कोई क्षणिक मान लिया जावे तो जीव जो पहिले था वह तो नष्ट हो गया, अब दूसरा जीव आया है। तो यह दूसरा जीव पहिले जीवके द्वारा देखे गए पदार्थका प्रत्यभिज्ञान कैसे कर सकेगा ? इस प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्तिसे भी यह सिद्ध हो जाता है कि प्रत्यभिज्ञान करने वाला पुरुष द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। तभी वह पहिले देखी हुई चीजका इस समयमें स्मरण और दर्शन करनेके एकत्वका परिज्ञान कर रहा है।

निरन्वयवादमें पूर्वोत्तरज्ञानक्षणोंमें कार्य कारणभाव माननेपर भी प्रत्यभिज्ञातृत्वकी असिद्धि—यहाँ शंकाकार यह कहता है कि दूसरेके द्वारा देखे गए पदार्थको दूसरा कोई जीव कैसे नहीं प्रत्यभिज्ञानसे जान सकता है ? देखिये ! उनमें कार्य कारण भाव सम्बन्ध बना हुआ है अर्थात् पूर्व चित्तक्षण कारण है उत्तर चित्तक्षण कार्य है जीवके बाद जीव नये नये पैदा होते रहते, हैं यह तो क्षणिकवादमें माना है। सो जो पहिला जीव है वह तो कारण है और अगला जो जीव है वह कार्य है। तो जब उन लगातार उत्पन्न होने वाले जीवोंमें कारण कार्य भावका सम्बन्ध बना हुआ है तो उस सिलसिलेके कारण दूसरा पुरुष पहिले पुरुषके द्वारा देखे गए

पदार्थका प्रत्यभिज्ञ न करनेके लिए समर्थ हो जायगा। तब सर्वथा क्षणिक भी रहा आया और प्रत्यभिज्ञान भी बन गया। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि पूर्वक्षणमें होने वाला प्रमाता अर्थात कारणरूपसे माना गया पूर्व जीव और उत्तर क्षणमे उत्पन्न हुआ प्रमाता अर्थात कार्यरूपसे माना गया वह जीव इन दोनोमे जो कार्य-कारण भावरूप सम्बन्ध विशेषकी कल्पना कर भी लो तो भी जैसे पिताके द्वारा देखे गए पदार्थको पुत्र प्रत्यभिज्ञानसे जान नही सकता इसी प्रकार इस कारण कार्यकी सन्ततिमे भी एक दूसरा अत्यन्त भिन्न अन्वयरहित दूसरा जीव पहिले जीवके द्वारा देखे गए पदार्थको प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे जान नही सकता है। शकाकार कहता है कि देखिये ! पूर्वक्षण मे और उत्तरक्षण मे कार्य-कारण सम्बन्ध होनेपर भी कैसे नही उत्तर जीव पूर्व जीवके देखे गएको नही जान सकता ? जब उसमे उपादान उपादेय सम्बन्ध विशेष है तो उत्तर क्षणमे उत्पन्न हुआ जीव उत्तर चित्तक्षण पूर्व चित्तक्षणके द्वारा जाने गए पदार्थ को प्रत्यभिज्ञानसे जाननेमे समर्थ हो जायगा। इसके समाधानमे कहते हैं कि उन पूर्व उत्तर क्षणोमे उपादान उपादेयरूप अतिशय विशेष भी मान लो ! लेकिन यह सम्बन्ध भी पृथक्त्वका निराकरण तो नही कर सकता। अर्थात् पूर्वक्षण उत्तरक्षणमे होते जाने वाले जीव एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न है, यह बात तो नही मेट सकते। और जब पूर्वक्षण उत्तरक्षण सर्वथा भिन्न ही रहे तब एकत्वका ज्ञान वहाँ बन नही सकता। पूर्वक्षण और उत्तरक्षणका पृथक्त्व माननेपर अर्थात् पूर्वपर्याय स्वतन्त्र एक द्रव्य है उत्तरपर्याय स्वतन्त्र एक द्रव्य है। इस तरह पूर्व और उत्तरक्षणको बिल्कुल भिन्न माननेपर प्रत्यभिज्ञान नही बन सकता है। इस ही बातको दिखा रहे हैं। देखिये ! जो पृथक्त्व यहाँ पूर्वक्षण और उत्तरक्षणमे है वही पृथक्त्व पिता पुत्रमे है। तो जैसे पिता पुत्र जब भिन्न भिन्न हैं और वहाँ यह बात घटित होती है कि पिताके द्वारा देखे गए पदार्थको पुत्र प्रत्यभिज्ञानसे नही जान सकता। इसी प्रकार पूर्वचित्तक्षणके देखे गए पदार्थका उत्तरचित्तक्षण प्रत्यभिज्ञान नही कर सकता। तो पिता पुत्रकी भाँति प्रत्यभिज्ञानके अभावका कारणभूत पृथक्त्व इस पूर्वक्षण और उत्तरक्षणमे है ही। सभी जगह उस पृथक्त्वकी अविशेषता है। पिता और पुत्र जैसे ये दोनो भिन्न-भिन्न है इसी प्रकार क्षणिकवादमे जितने भी चित्तक्षण (जीव) सतानमे उत्पन्न हो रहे हैं वे चित्तक्षण भी भिन्न-भिन्न है। संतान कुछ नही है, किंतु समझनेके लिये बताया जा रहा है कि एक ही शरीरमे जैसे अनेक जीव उत्पन्न होते है तो उनकी परस्पर विभिन्नता है और तब वे सारे जीव भिन्न-भिन्न ही हैं। तो एकके जाने हुए पदार्थका दूसरा प्रत्यभिज्ञान नही कर सकता।

निरन्वयवादमे भिन्नचित्तक्षणोमे प्रत्यभिज्ञानकी असभवता—यदि शङ्काकार यह कहे कि एक सतानमे पडे हुए चित्तक्षणोमे प्रत्यभिज्ञान बन जायगा, नाना संतानोमे पडे हुए चित्तक्षणोमे प्रत्यभिज्ञान न बनेगा। यद्यपि स्व सतति पतित व

सन्तानान्तरपतित चित्तक्षणोंमे पृथक्त्वकी अविशेषता है जैसे ही पिता पुत्रके चित्त है उस ही प्रकार पृथक एक देशमे उत्पन्न होने वाले नाना चित्तक्षण है। यों पृथक्त्वको समानता होनेपर भी एक सन्ततिमे आये हुए चित्तक्षणोंमे वासना विशेष पाई जाती है। उस वासना विशेषके सद्भावके कारण प्रत्यभिज्ञान बन जायगा। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि तब तो यही बताओ कि वही एक सन्तान किन्हीं क्षणोंमें अर्थात् अपनी धाराके क्षणोंमे ही कैसे सिद्ध हो गई ? यदि कहो कि प्रत्यभिज्ञ से वहाँ सन्तान की सिद्धि हो जाती है तो देखिये ! यहाँ इतरेतराश्रय दोष आता है क्षणिकवादमें कि एक सतति जब सिद्ध हो तब तो प्रत्यभिज्ञान सिद्ध हो सकेगा और जब प्रत्यभिज्ञान सिद्ध हो तब एक सतति सिद्ध हो, क्योंकि अब कहा जा रहा है यह कि एक सन्तान पडे हुए चित्त क्षणोमे वासना विशेष होती है और प्रत्यभिज्ञान बनता है ना पहिले यही तो ज्ञान करनेकी आवश्यकता है कि वह एक सतति समझी कैसे जाय? सो उत्तर में कह रहे हैं शङ्काकार यह कि प्रत्यभिज्ञानसे एक सतति मानी जाती है। तब यहाँ यह इतरेतराश्रय दोष होता है कि जब एक संतति सिद्ध हो ले तब तो प्रत्यभिज्ञान सिद्ध होगा और जब प्रत्यभिज्ञान सिद्ध हो लेगा तब एक सतति सिद्ध होगी, इस तरह परस्पर इतरेतराश्रय दोष होता है यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। किन्तु स्याद्वाद सिद्धान्त मे इतरेतराश्रय दोष नही आ सकता, क्योंकि वहाँ स्थितिका अनुभवन किया गया है अर्थात् पदार्थ कथञ्चित् नित्य हैं उनकी स्थिरता है। स्थिरता होनेसे एक द्रव्यमे यह बात बन जाती है कि पहिले समयमे देखे गए पदार्थको उत्तर समयमे स्मरण भी करले प्रत्यभिज्ञान भी करले, स्याद्वादियोंने ऐसा तो नही माना कि एक द्रव्यकी सिद्धि होने से प्रत्यभिज्ञान हो और प्रत्यभिज्ञान होनेसे एक द्रव्यकी सिद्धि हो। यदि स्याद्वादी जन ऐसा मानते तो उनके पक्षमे भी इतरेतराश्रयका दोष दे सकते थे। भेद ज्ञानसे भेद सिद्ध होनेकी तरह अभेद ज्ञानसे स्थितिका अनुभव माना गया है। जैसे कि लोग सब समझते हैं कि भेद विज्ञानसे यह बात जाहिर होती है कि इन वस्तुओंमे भेद है तब इसी तरह अभेदज्ञानसे यह भी बात जाहिर हो जाती है कि ये ही पदार्थ अब तक चले आये हैं, उनमें ध्रुवता है।

अनुगताकारकी परमार्थता होनेसे पदार्थके नित्यत्वकी सिद्धि— यदि अनुगताकार जैसी स्थिति जो अनुभवमे आ रही है उसे भ्रम मान लिया जायगा तो उत्पाद और विनाशमे अविश्वास हो जायगा, क्योंकि स्थितिके बिना उत्पाद विनाश के ढङ्गसे अनुभवका निर्णय नही पाया जाता। जैसा कि क्षणिकवादियोंने स्वलक्षणकी बात मानी है वह सिद्ध नही हो सकती, क्योंकि टूटे हुए स्वरूपसे निर्णय नही हुआ करता। देखिये ! यह शङ्काकार प्रतिक्षण उत्पाद विनाशको यो मान रहा है कि उनकी स्थिति तो होती ही नही है। केवल उत्पाद है, केवल विनाश है तो सर्वथा स्थितिसे रहित प्रतिक्षण उत्पाद विनाशको एक बार भी वे निर्णयमें नही ला सकते।

ो निर्णय तो कुछ भर नही सकते और स्थितिके अनुभवके निर्णयको भ्रान्त कल्पना कह रहे हैं तो कैसे न उसे चैतन्यरहित कहा जायगा ? वह तो जडवत् ही क्रिया कह लायगी, क्योकि वहाँ विवेकका कुछ भी उपयोग नही किया जा रहा। जहाँ द्रव्यापेक्षया नित्यत्व माना गया है वहाँ यह बात कैसे कही जा सकती है कि नित्यत्वके मन्तव्यमे प्रत्यभिज्ञान नही हो सकता पूर्व और उत्तर पर्यायमे रहने वाले एकत्वका बुद्धिमे सकलन नही हो सकता। यह दोष तो सर्वथा नित्यत्वके पक्षमे है। जैसे कि भिन्न-भिन्न दर्शन क्षणोमे सकलन नही होता अर्थात् क्षणिकैकान्त पक्षमे, जिस प्रकार एकत्वका प्रत्यभिज्ञान नही होता उसी प्रकार सर्वथा नित्यत्वके सिद्धान्तमे भी एकत्वका सकलन नही होता। दर्शनका विषयभूत कोई एक क्षण है, उसमे ही कोई निर्णय नही बन सकता है, तब निर्विकल्प प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमे चूं कि निरशता है तो प्रत्यभिज्ञान कैसे बनेगा ? इसी प्रकार जहाँ सर्वथा अपरिणामी माना गया है वहाँ भी निरशता है अत प्रत्यभिज्ञान नही बन सकता सो एकान्त पक्षमे ही यह दोष है। जो लोग सर्वथा नित्य मान रहे हैं वहाँ चूं कि पूर्वापर क्षण नही समझा जा सकता है, इस कारणमे प्रत्यभिज्ञान न बनेगा। इसी कारण मानना चाहिए कि वस्तु कथचित् क्षणिक है।

दर्शन व स्मरणके विषयसे प्रत्यभिज्ञान विषयकी विविक्तता—पदार्थ कथञ्चित् नित्य है तो कथञ्चित् अनित्य है, क्योकि उनके परिणमनका भेद पाया जा रहा है। परिणमनका भेद प्रतीति सिद्ध है, वह असिद्ध नही है, क्योकि दर्शनका परिणमन और प्रकारका है और समय भी उसका भिन्न है और प्रत्यभिज्ञानका काल भी और प्रकारका है भिन्न है। जैसे किसी पुरुषने देवदत्तको एक वर्ष पहिले देखा था आज वह सामने आ गया है तो उसके विषयमे यह प्रत्यभिज्ञान बन रहा है कि यह वही देवदत्त है जिसको गत वर्ष देखा था। तो यहाँ दर्शन हुआ था, अतीतकालमे प्रत्यभिज्ञान हो रहा है वर्तमान समयमे तो दर्शन और प्रत्यभिज्ञानके समयमे यदि अभेद कर दिया जाय तो इस तरह उन दोनोका ही अभाव बन बैठेगा। दर्शनके समयको यदि प्रत्यभिज्ञानमे मिला दिया जाय तो फिर उसका निर्णय नही बन सकता। प्रत्यभिज्ञानके समयको यदि दर्शनमे मिला दिया जाय तो पूर्व और उत्तर पर्यायमे रहने वाले एक द्रव्यका परिमान ही नही हो सकता। इस कारणसे मानना चाहिए कि दर्शनका काल भिन्न है और वह काल अवग्रह, ईहा अवाय और धारणात्मक निर्णयका कारण है, वह अतीतमे हो चुका प्रत्यभिज्ञानका समय भिन्न है और वह इस समय हो रहा है और वह प्रत्यभिज्ञानका काल दर्शन और स्मरणके सकलनका कारणभूत है अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनका काल भिन्न है, प्रत्यभिज्ञानका काल भिन्न है और इस प्रत्यभिज्ञानका करने वाला पुरुष भी पहिले था, अब है और जिस विषयमे प्रत्यभिज्ञान किया जा रहा है वह विषयभूत पदार्थ भी पहिले था और अब भी है। तो

यों सिद्ध होता है कि पदार्थ कथञ्चित् नित्य है और कथञ्चित् अनित्य है।

सर्वथा नित्यत्व व सर्वथा क्षणिकत्व दोनों मन्तव्योंमें ज्ञानकी असंचरताका दोष—और भी देखिये। चाहे कोई नित्यत्वका एकान्त करे चाहे कोई क्षणिकत्वका एकान्त करे दोनों ही पक्षोंमें ज्ञानका संचरण नहीं हो सकता। अगर वस्तु सर्वथा नित्य है तो एक विषयको छोड़कर दूसरे विषयका ज्ञान कैसे कर लिया जायगा? यदि वस्तु सर्वथा क्षणिक है तो एक विषयको छोड़कर वह ज्ञान दूसरे विषयमें कैसे जा सकेगा? तो नित्यत्वके एकान्तमें भी ज्ञानका संचरण नहीं होता और अनित्यत्वके एकान्तमें भी ज्ञानका संचरण नहीं होता। इस तरह यहाँ अनेकान्तकी सिद्धि होती है। शङ्काकार कहता है कि यदि अनेकान्तमें ही ज्ञानका संचार होता है तो अनेकान्तका तो प्रत्यक्षसे ही बोध होना चाहिए। तो जब अनेकान्तकी प्रत्यक्षसे ही प्रतीति है फिर उसकी सिद्धिके लिए प्रत्यभिज्ञायमानत्वात् आदिक अनुमान प्रयोग करना निरर्थक ही है। जो बात प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसके सम्बन्धमें अनुमानका प्रयोग करना व्यर्थ है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि केवल सन्देहमें पाये हुए व्यक्तियोंको भेदकल्पनाके द्वारा समझाया गया है। सो भेदकल्पनाके द्वारा कथंचित् जात्यंतर होने पर भी प्रत्यभिज्ञान आदिकके कारणभूत पदार्थमें स्थिति आदिककी व्यवस्था की जाती है। अर्थात् यद्यपि प्रत्यक्षसिद्ध है स्पष्ट है कि वस्तु अनेकान्तात्मक है फिर भी जिन जीवोंको इस विषयमें संदेह होता है उनको समझानेके लिये यह सब व्यवस्था की गई है कि पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है और उस समय उन उत्पादव्ययध्रौव्यमें परस्पर भेदकी कल्पना की गई है। यद्यपि सब धर्मात्मक एक पदार्थ है जिसका ज्ञान जा रहा है फिर भी समझानेके लिए उनमें भेदकल्पना की जाती है। सो यह बतलाया कथंचित् जात्यंतरमें की गई है, सर्वथा जात्यन्तरमें नहीं है अर्थात् सर्वथा नित्य ही में ऐसी उस पदार्थमें कल्पना और व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती है, क्योंकि परस्पर निरपेक्ष नित्य और अनित्य कोई पदार्थ ही नहीं है। एक पदार्थ जैसे सर्वथा नित्य नहीं है उसी प्रकार सर्वथा क्षणिक भी नहीं है। तो वस्तु एक है, उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म पाये जाते हैं।

धर्मी वस्तुमें उत्पादव्ययध्रौव्य धर्मकी सिद्धि—इस प्रसङ्गमें कोई यह शङ्का न करे कि जब उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन स्वभावभेद पाये जा रहे हैं तो पदार्थ ही वहाँ तीन हो जायेंगे। स्वभावभेदकी उपलब्धि यद्यपि है तथापि वहाँ न नानात्वका प्रसङ्ग है न उनका परस्परमें विरोध है और न उन स्वभावभेदका सांकर्य होता है तथा न अनवस्था दोष आता है, ऐसा अनेक जगह देखा जा रहा है कि वस्तु एक है और वहाँ भेद पाये जा रहे हैं। जैसा कि शङ्काकारने भी स्वयं माना है कि चित्रज्ञान (ज्ञानक्षण) तो एक है और उसमें ग्राह्याकार और ग्राहकाकार ये दो स्वभाव पाये जाते हैं। एक वस्तु हो और उसमें एक ही साथ अनेक स्वभाव पाये जायें तो इसमें

भी वस्तु नाना नही बन जाती। इसका अभी दृष्टात दिया ही गया है जैसे कि ज्ञानमे वेद्याकार और वेदकाकार पाये जाते हैं। तो यह समझनेके लिए तीन चीजें हुई—ज्ञान, ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार। फिर भी इनमें नाना ज्ञानपनेका प्रसङ्ग नही आता। उनमें अनेक स्वभाव हैं मगर सत्त्व एक है। यदि शङ्काकार यह कहे कि सिद्धान्तमे जो एक ज्ञान माना गया है जिसमें कि ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार पाये जाते हैं सो अशक्य विवेचन होनेसे अर्थात् उस एक सम्वेदनमे यह ग्राह्याकार है, यह ग्राहकाकार है, यो उन्हे अलग-अलग फेंका नही जा सकता। उनका विवेचन नही किया जा सकता। इस कारणसे वे सब एक ज्ञानस्वरूप ही हैं। अतः दृष्टान्तमे हमारे सम्वेदनकी बात कहना उचित नही है। यहाँ तो केवल एक ही ज्ञान है। अब स्याद्वादी ही बताये कि स्वभावभेद होनेपर वस्तु एक किस तरह हो जाता है? इस शङ्काके उत्तरमे समझिये कि जैसे वेद्याकार वेदनाकारमें अशक्य विवेचनता होनेसे एक ज्ञानपना बताया है तो इसी तरह उत्पादव्ययध्रौव्यमे भी अशक्य विवेचनत्व है। वस्तुमेसे उत्पादको अलग नहीं किया जा सकता व्यय या ध्रौव्य अलग नही किया जा सकता है याने कोई एक अन्य धर्मोंको छोडकर स्वतन्त्रतया रहे, यह तो असम्भव ही है। तो अशक्य विवेचन होनेके कारण वहाँपर भी एक वस्तुपना मान लो, क्योंकि अशक्य विवेचनता होनेसे एक ज्ञानपनेकी स्थापना शङ्काकारने की तो उसी अशक्य विवेचनताके कारण प्रत्येक वस्तुमे भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य होनेपर भी एक वस्तुपना मान लेना चाहिए।

उत्पादव्ययध्रौव्यमे अशक्य विवेचनत्व व अपृथक्सिद्धत्वकी चर्चा— अब यहाँ शकाकार कहता है कि यदि अशक्य विवेचनता होनेके कारण सब जगह एकता मान ली जाय तो रूप रस आदिकमे भी एकता बन बैठेगी। इस कारण अशक्य विवेचनताके कारण सब जगह एकत्व नही माना जा सकता। जहाँ एकत्व है वहाँ ही एकत्व माना जायगा। इस आशकापर स्याद्वादी कहते हैं कि किसी एक फल मे रूप रस आदिक जुदे-जुदे नही किए जा सकते। वह अशक्य विवेचन है, सो यहाँ एक वस्तुपना आ जाय तो आने दो! उससे कुछ भी अनिष्ट नही बनता, क्योंकि रूप रस आदिकको नाना वस्तुपना माना ही नही गया है। प्रत्यक्ष दीखता है कोई आमका फल है तो वह एक ही तो वस्तु है, उसमे रूप, रस गंध, स्पर्श आदिक पाये जा रहे हैं तो वह उसका तादात्म्य रूप धर्म है यह बात तो कही जा रही है। अनेक स्वभाव पाये जानेपर भी वस्तु नाना नही बन जाते। उसीका यह दृष्टान्त भी बन गया कि देखो! जैसे एक फलमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाये जा रहे हैं तो अनेक स्वभावकी उपलब्धि है, इतनेपर भी वह फल नाना नही हो जाता किन्तु एक ही रहता है। इसलिए एक वस्तुपनेकी जो आपत्ति दी है वह आपत्ति नही है, यह तो सिद्धान्तकी बात है। अत यह सिद्ध है कि उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म एक वस्तुमे होनेपर भी वहाँ नानापन नही आता है। जैसे कि एक ज्ञानमे वेद्याकार वेदकाकार होनेपर भी नाना-

पन नहीं आता इसी प्रकार एक फलमें रूप रस आदिक होनेपर भी नानापन नहीं आता। यों ही एक वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य हैं तिसपर भी नानापन नहीं आता।

असाधारणधर्मवत्त्वसे एक द्रव्यत्वकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि यदि रूप रस आदिकका अशक्य विवेचनता होनेसे एक वस्तुत्व मान लेते हो अर्थात् रूपक्षण रसक्षण आदिक भिन्न–भिन्न पदार्थ नहीं हैं किन्तु कोई एक ही पदार्थ है और उसका ही यह धर्म है, ऐसा मान लेते हो तो आत्मा आकाश आदिक पदार्थोंमें भी अशक्य विवेचनता मौजूद है अर्थात् उनको अलग–अलग किया नहीं जा सकता क्योंकि एक देशमें ही रह रहे हैं। जहाँ भी आत्मा है वहाँ ही आकाश आदिक हैं। तब ऐसी स्थितिमें उन सब पदार्थोंमें भी एक द्रव्यपना हो जायगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि आत्मा आकाश आदिकमें यद्यपि देश अभेद है अर्थात् जिस क्षेत्रमें आत्मा है उस ही क्षेत्रमें आकाशादि अनेक द्रव्य हैं। इतनेपर भी अशक्य विवेचनता नहीं कह सकते, क्योंकि वे सब पदार्थ अपनी जुदी–जुदी सत्ता लिए हुए हैं। उनके लक्षण जुदे हैं, उनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वय स्वयका है। तो ऐसे परके साथ उन पदार्थोंका एक द्रव्यपने जैसा तादात्म्य नहीं हो सकता है। हाँ, यदि सत्ताके रूपसे एक द्रव्यका तादात्म्य माना जाय अर्थात् ऐसा सिद्ध किया जाय कि सब कुछ एक सत् है और उस ही की ये सारी पर्यायें हैं तो यों सद्रूपको एक द्रव्य मानकर फिर यदि तादात्म्य मानकर एक वस्तुपना मानते हो अर्थात् सत्त्व आकाशमें भी है सत्त्व आत्मा आदिकमें भी है इस तरहसे इन सबको अगर एक वस्तुरूप मानते हो तो यह भी स्याद्वादियोंको इष्ट है, क्योंकि कहा है कि द्रव्य एक है और वह अनन्त पर्यायात्मक है। अब इस प्रसङ्गमें द्रव्यको सद्रूप ही निरखा गया है। जो सम्मात्र है वही एक वस्तु है, तब उसका अब भेद करेंगे तो आत्मा आकाश आदिक अनेक भेद हो जाते हैं। यों सद्रूपताकी निगाहसे अगर एकत्व मानते हो तो वह भी इष्ट है। तब इस तरहसे जब अवान्तर सत्ताकी सिद्धि दीखती है तो उनके तादात्म्य और उत्पाद व्यय ध्रौव्यको निरखकर जो भिन्न भिन्नपना दृष्टिमें आता है उससे इसमें नानापन सिद्ध होता है। और चूंकि जब आत्मा आकाश आदिक नाना हैं तो इसमें वैयधिकरण दोष नहीं दे सकते। तो इस प्रकार उभय दोषका भी प्रसङ्ग नहीं आता। एकत्व पक्षमें जो क्षणिकवादियोंके द्वारा दोष कहा जा रहा है और अनेकत्व पक्षमें द्वैतवादियोंके द्वारा जो दोष कहा जा रहा है वह स्याद्वादमें सम्भव नहीं होता। देखिये! जैसे वेद्यादिक आकार और आत्मज्ञान इनमें उत्पाद आदिक रूपसे जो एक वस्तु है अर्थात् मूल तो वह बोध है और उसमें वेद्याकार वेदकाकार हुआ है वो वह कथञ्चित् जात्यंतररूप भी है। जैसे कि चोरमें अचोर जात्यंतर रूप है। एक चोरी करने वाला दुर्जन पुरुष है और एक चोरीका त्याग करने वाला सज्जन पुरुष है तो उनमें भिन्नता मानी जायगी। इस प्रकार अनेक व्यसनोंसे युक्त और व्यसन रहित पुरुषमें भिन्नता मानी जाती है। ऐसे ही आत्मबोधमें

और वेद्याकार आकारमे जात्यतर भी मान लिया जा सकता है।

एक वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यके सद्भावमे विरोध सशय आदिका अनवकाश—उक्त प्रकारसे जब यह सिद्ध हो चुका कि स्थिति आदिक भी एक वस्तु मे सम्भव हो गए तो विरोध दोष भी नही आता। एक आत्म तत्त्वमे नित्यपना भी है अनित्यपना भी है। इन दोनोमे कोई विरोध नही है, क्योकि विरोध होता है अनुपलम्भ साधन द्वारा अर्थात् जहाँ दो पदार्थ एक साथ न पाये जाये वहाँ कह सकते हैं कि विरोध है, पर वस्तुमे तो नित्यपना और क्षणिकपना पाया ही जा रहा है। जैसे एक जगह एक ही समयमे शीतस्पर्श और उष्णस्पर्शका विरोध है, क्योकि पाया नही जाता। जिस जिस्मेमे ठण्डा हो पदार्थ वहा गर्मी कहाँ है? तो अनुपलब्ध है इस कारण विरोध प्राप्त होता है, किन्तु पदार्थमे नित्यत्व अनित्यत्व आदिक धर्मोका उपलम्भ है। द्रव्यरूपसे पदार्थ शाश्वत रहता है और पर्यायरूपसे पदार्थ प्रतिक्षण नवीन-नवीन अवस्थाओमे हुआ करता है। जब ये सभी बातें पाई जा रही हैं तो विरोध कैसे कहा जा सकता है? जब एक वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों पाये गए तब वहाँ विरोध नही कहा जा सकता। जैसे कि ज्ञानमे वेद्याकार और वेदकाकार ये दोनो पाये जाते हैं उस ही साधनसे सशय होनेका प्रसङ्ग भी समाप्त हो जाता है क्योकि पदार्थ द्रव्यरूपसे स्थिर है इसमे क्या विचलन हो सकता है? जहाँ चलित प्रतिपत्ति हो उस ही को तो सशय कहते हैं। मगर एक वस्तु, सदा रहता है, यह नियम है कि जो सत् है उसका अभाव नही हो सकता, जो है वह किसी रूपसे फिर भी रहेगा। जो है सो तो है ही, चाहे उसकी परिणतिया कितनी ही प्रकारकी बदल जायें लेकिन जो सत् है वह कभी अन्यरूप नही हो सकता है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे सकर व्यतिकर वैयधिकरण आदि दोषोका अभाव—जब स्थितिमे चलित प्रतिपत्ति नही हो रही है तब उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे सकर दोष नहीं हो सकता। उत्पाद व्ययध्रौव्य ये तीनो मिलकर सांकर्यको प्राप्त हो जायें अर्थात् अपना अपना स्वभाव छोड दें, यह बात सम्भव नही है, क्योकि उनका विचलन नहीं होता है। जो स्थिर पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे शाश्वत रहने वाला है तो उस स्वरूपमे उत्पाद विनाश नही है। उत्पाद विनाशमे स्थितिका स्वरूप नही है। साकर्य दोष तो तब आयगा जब स्थिति धर्म अपना स्वरूप छोडकर उत्पादके धर्मको अङ्गीकार करले या कोई एक धर्म अपने स्वरूपको छोडकर अन्य स्वरूपको ग्रहण करले। तब तो सकरताकी बात कही जा सकती। वस्तुमे तो ३ धर्म हैं किन्तु जिस धर्मका जो स्वरूप है वह स्वरूप उस हीका है, अतएव वहाँ सकर दोष नही है। यहाँ कोई शङ्का कर सकता है कि जब एक साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म पाये जा रहे हैं तो संकर दोष क्यो न कहलायेगा? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि एक वस्तुमे एक

ाथ उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों पाये जा रहे हैं लेकिन इन तीनोंका परस्परमें सांकर्य ही है। उत्पाद आदिक परस्परमें एक दूसरे रूप नहीं हो जाते और उत्पाद व्यय ौव्यवान एक वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनोंका रहना इसको ही यदि संकर कहते तो यह कोई दोषकी बात नहीं है। यह तो वस्तुका लक्षण ही है। तो एक वस्तुमें त्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों पाये जाते हैं और परस्परमें वे अपने अपने स्वरूपको ही रख हे हैं। तो व्यतिकर दोषका भी प्रसङ्ग नहीं आता, क्योंकि व्यतिकर दोष वहाँ ायेगा कि जब स्थिति उत्पादमें गमन करे, उत्पाद स्थिति आदिकमें चला जाय किन ये तीनों धर्म उनका जो निजका स्वरूप है सो वे परस्परमें गमन नहीं करते। से कि एक ज्ञानमें वेद्याकार और वेदकाकार है लेकिन वेदकाकार वेद्याकारमें गमन हीं करता, वेद्याकार वेदकाकारमें गमन नहीं करता अर्थात् ज्ञानमें जो का स्वरूप है कि पदार्थको समझ लेना और जिस पदार्थको समझा जा रहा है उस पदार्थके ाकार प्रतिभासका होना सो ये दोनों पाये जा रहे हैं अनादिसे परस्परमें उनका मन नहीं है इस कारण व्यतिकर दोष भी नहीं होता और इसी कारण उनमें अन-स्था दोष भी नहीं है, क्योंकि स्थिति स्वरूप वस्तुमें जन्म और विनाश नहीं माना। थतिमें स्थिति ही है, जन्मविनाश जन्मविनाशमें ही है। तो प्रत्येक ने अपना स्वरूप खते हैं और त्रयात्मक रूपसे वह वस्तु सदा अवस्थित रहती है। इस कारण उत्पाद य ध्रौव्यात्मक पदार्थ है और इसी कारण पदार्थ कथञ्चित नित्य है और कथंचित नित्य है, इसमें किसी भी प्रकारका संदेह न करना चाहिये।

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक वस्तुमें नय एवं प्रमाणकी विवक्षासे त्रयात्मक-त्व व उत्पादादिकी व्यवस्था—यहाँ शङ्काकार कहता है कि स्थिति उत्पाद और नाश इनका परस्पर गमन नहीं है तो इनकी भी एक वस्तुमें अनुपलब्धि हो जायगी ौर इस कारण विरोध हो जायगा, क्योंकि विरोध होता है अनुपलब्धिके माध्यमसे। हाँ दो बातें पाई जा सकें, समझना चाहिए कि उन दोका वहाँ विरोध है। तो जब सका लक्षण अलग है, उत्पाद विनाशका लक्षण अलग है और यह भी बता रहे हो उत्पाद स्वरूपमें स्थिति और विनाश नहीं है, स्थिति स्वरूपमें उत्पाद विनाश नहीं तो इसका सीधा अर्थ यह ही तो हुआ कि एक जगह एक स्वरूपमें इन तीनोंकी नुपलब्धि है और इस तरह माननेपर विरोध ज्योंका त्यों उपस्थित रहता है। इस ङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यहाँ यद्यपि ऐसा स्वरूप बताया गया है कि स्थितिका जो रूप है, जो भावार्थ है वह स्थितिमें ही है उत्पाद विनाशमें नहीं है उसी प्रकार त्पादका स्वरूप उत्पादमें ही है स्थिति और विनाशमें नहीं है। विनाशका स्वरूप, त्वर्थ जो भावार्थसे विदित होता है वह उस हीमें है किन्तु ऐसा एकान्त माननेपर ो एकान्तका अभाव न हो जायेगा। अनेकान्तमें यह पद्धति प्रसिद्ध है कि वस्तु त्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है और जब उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंके लक्षणपर

चार किया जाता है तो तीनोंके लक्षण अपने-अपने भावार्थके अनुसार निज-निजमें हैं। सो सम्यक एकांतका अनेकान्तके साथ विरोध नहीं हो सकता है। नय विवक्षा तो एकान्तका उपदेश किया गया है और प्रमाण विवक्षासे अनेकान्तका उपदेश कया गया है और नय एवं प्रमाण इन दोनोंके ही ढगसे जो दृष्ट और इष्टसे अविरुद्ध ऐसे स्वरूपकी व्यवस्था बनती है। याने जो वस्तु प्रत्यक्षसिद्ध है और जो अनुमान गगम आदिक प्रमाणसे सिद्ध है ऐसी वस्तुकी नय और प्रमाणके ढङ्गसे ही व्यवस्था बनती है।

वस्तु उत्पाद व्यय व ध्रौव्यके स्वरूपकी जिज्ञासा—अब यहां कोई जज्ञासु पूछ रहा है कि बताओ वह स्वरूप जिस स्वरूपके द्वारा स्थिति स्थिति मात्र हो अर्थात् वह उत्पादात्मक न हो, इसी प्रकार वह भी स्वरूप बताओ जिस स्वरूपसे विनाश विनाशमात्र हो, उत्पाद स्थितिरूप न हो और उत्पाद उत्पादमात्र हो, और वह स्थिति विनाशरूप न हो। ऐसे अब ये तीन स्वरूप बताओ और वह भी एक स्वरूप बताओ कि जिस स्वरूपसे वस्तु त्रयात्मक प्रसिद्ध होती है अर्थात् पदार्थ उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मक है, यह सिद्ध हो जाय ऐसा स्वरूप बताओ। ऐसा किसी जिज्ञासुके द्वारा समन्तभद्राचार्यसे पूछे गए हो अथवा मानो भगवानके ही द्वारा पूछे गए हो तो समन्तभद्राचार्य इसके समाधानमें कहते हैं—

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥ ५७ ॥

वस्तु उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यके स्वरूपकी व्यवस्था—वस्तु सामान्यात्मकस्वरूपमें विनष्ट भी नहीं होती। सामान्यात्मक रूपसे तो व्यक्त अन्वय देखा जाता है अन्वयकी दृष्टिमें तो वह ध्रुव है व्यक्त है। जैसा है वैसी ही सत्ता है किन्तु पर्याय की अपेक्षामें वस्तु विनष्ट होती है और उत्पन्न होती है। इतनेपर भी वस्तुमें, एक ही वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एक साथ रहते हैं और ऐसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका एक साथ रहना इस हीका नाम सत् है। ऐसा हे भगवान आपके सिद्धान्तमें स्पष्ट बताया गया है। सत्ताका लक्षण किया गया है कि जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे अनुस्यूत हो उसे सत्ता कहते हैं। जो भी पदार्थ सत् हो उसमें नियमसे उत्पादव्यय ध्रौव्य होगा ही। तो इस तरह सामान्य स्वरूपमें जो वस्तु स्थितिमात्र है उस स्वरूपसे वस्तु उत्पादस्वरूप और विनाशस्वरूप नहीं है और विशेष स्वरूपसे वस्तु उत्पन्न हुई है विनष्ट हुई है। अतएव उत्पादस्वरूप और विनाशस्वरूप हुआ और सत्वकी दृष्टिसे चूंकि सत् होता है उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक सो वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यका स्वरूप है। सामान्य आत्माका अर्थ है द्रव्यात्मा अर्थात् पूर्व परिणमन और उत्तर परिणमनमें जो

साधारण स्वभाव हो वह कहलाता है सामान्यात्मा। उस सामान्यात्माके रूपसे कोई भी वस्तु न उत्पन्न होती है और न विनष्ट होती है, यह बात व्यक्त है। कहीं असत्य रूपसे अन्वय देखे जानेको एक हेतुपना न हो जाय अथवा अन्वय कोई असत्य रूपसे न लगाया जाय इसलिए यहाँ व्यक्त शब्द दिया है। जैसे कि मृतपिण्डसे घट बना और घटसे कपाल बन गए तो पूर्व उत्तर जो परिणाम हुए हैं उनमे साधारण स्वभाव है मृत स्वरूपका। कहीं कोई ततु व मृतपिण्ड आदिकमें घटोत्पादके लिए साधारण स्वभाव न बन बैठेगा, अतएव वहाँ पूर्व परिणमन और उत्तर परिणमनोमें विशिष्ट अन्वय परखना होगा। तो यहाँ अनुमान प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ कि वस्तु सामान्यात्मक स्वरूपसे न उत्पन्न होती है न नष्ट होती है। और विशेष स्वरूपसे उत्पन्न होती है और नष्ट होती है।

सामान्यात्मक स्वरूपसे अनुत्पाद व व्ययकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त 'व्यक्तमन्वयात्' हेतुकी अव्यभिचारिता—यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि देखिये! अब नख नहन्नीसे काट दिए गए और फिर वही नख उत्पन्न हो गए तो वहाँ तो अन्वय देखा जा रहा है। वही नख था जो नष्ट हुआ वही नख है जो उत्पन्न हुआ, तो जब उस नखमें उत्पत्ति और विनाश देखा जा रहा है तो फिर आप यह कैसे कह रहे हैं कि सामान्यात्मक स्वरूपसे न उत्पाद होता है न विनाश होता है। अब देखिये! यहाँ उस नखका ही विनाश हो गया और उस नखका ही उत्पाद हो गया। इस शङ्का के उत्तरमे कहते हैं कि हमने जो हेतु दिया है वह है व्यक्त अन्वयात्। अन्वयके साथ व्यक्त विशेषण लगाया गया है। यदि शङ्काकार यह कहे कि व्यक्त यह विशेषण लगाया जानेपर भी व्यभिचार कैसे न आयगा? तो देखिये! प्रमाणसे जो खण्डन हो जाय, ऐसा एकत्व अर्थात् अन्वय व्यक्त न माना जायगा, तो यहाँ नखमें जो नख विनष्ट हो गया, तोडकर गिरा दिया गया वह नख तो वहाँ पडा ही है। अब जो अगुलीमें नख और बढा है तो वे नखके अवयव अन्य हैं, उनका उत्पाद हुआ है। तो चू कि नखपनेकी सदृशता है, जो तोडकर गिराया गया वह नख और जो उत्पन्न हुआ वह नख समान है। उस समानताकी वजहसे ऐसा भले ही कोई कहदे कि जो नख टूट गया था वही नख उत्पन्न हुआ है। मगर टूटा हुआ नख तो अब भी वहीं कहीं पडा हुआ देखा जा सकता। कैसे फिर यह कहा जा सकता कि वही नख है। वही नख है, ऐसा कहना अव्यक्त अन्वय सादृश्यके कारण भ्रान्तिसे ही सम्भव है। तो इस तरह यहाँ एकत्वका दर्शन होनेसे यह बात सिद्ध हुई कि सामान्य स्वरूपसे न वस्तु उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है। यही हेतु दिया गया है व्यक्त अन्वय होनेसे। तो यहाँ जो हेतु कहा गया है वह प्रमाण विरुद्ध नहीं है, क्योंकि सत्य प्रत्यभिज्ञानसे अन्वयकी सिद्धि होती है इस कारण अन्वित स्वरूपसे तो वस्तु स्थिर ही रहा करती है तो जिज्ञासु को यह पूछना था कि वह कौन स्वरूप है? जिस स्वरूपसे स्थिति स्थिति-

मात्र ही रहे। तो इस कारिकामे बताया गया है कि वह है अन्वयात्मक स्वरूप, जिस स्वरूपसे स्थिति स्थितिमान हीं है।'

विशेषके अनुभवसे उत्पाद व्ययकी सिद्धि वस्तु विनष्ट होवे एवं वस्तु उत्पन्न होवे, उसका स्वरूप है विशेषपर्याय। सो पर्यायस्वरूपसे वस्तु विनष्ट होती है और उत्पन्न होती है। जैसे घटसे कपाल बना तो कपाल पर्यायसे तो वहां उत्पाद है और घटपर्यायसे वहां विनाश है। तो ऐसे विशेषके अनुभवसे वस्तु विनष्ट होती है और उत्पन्न होती है यहां शङ्काकार कहता है कि वस्तुका विनाश स्वरूप और उत्पादरूप सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया है उसमे तो व्यभिचार आता है। जैसे सफेद शङ्ख हो और वहां भ्रान्तिसे पीताकार दर्शन होता हो वहां जो पीलिया रोगवाला पुरुष है उसको शुक्ल शङ्खमे पीताकार दृष्टिमे आ रहा है तो देखिये! वस्तुका तो अनुभव है पीताकार पर्याय ही तो है वह तो समझमे आया, लेकिन यहां उत्पाद विनाश किस तरह हुआ? शङ्ख वही है? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि यहांपर भी व्यक्त यह विशेषण लगा लीजिए! व्यक्तरूप जहां विशेषका अनुभव हो, दर्शन हो तो समझिये कि वह वस्तु विनाश स्वरूप है और उत्पादरूप है। जो भ्रान्तिविशेष दर्शन हुआ है अनुभूय शङ्खमें जो पीताकार दृष्टिमे आया है रोगीको वह व्यक्तरूप नही है, स्पष्ट सत्यरूप नही है। वह तो भ्रमकी बात है, इसी कारण पूर्वाकारके विनाशको न छोड़ता हुआ हो और उत्तराकारका अविनाभावी बन जाय सो नही होता। अर्थात् वहां यह नहीं हुआ है कि उस शुक्ल शङ्खने सफेदीका परित्याग किया है और फिर पीताकारका ग्रहण किया हैं। वह सब भ्रान्त दर्शन है मगर जीवादिक पदार्थोंके सम्बन्धमे जो विशेष दर्शन होता वह अव्यक्त नही है किन्तु व्यक्त है। वहां कोई बाधक प्रमाण दृष्टिमे नही आता, अर्थात् जीवादिक पदार्थ जब अपनी पर्याय बदलते रहते हैं तो वहां पूर्व पर्यायका परित्याग और उत्तरपर्यायका परिग्रहण होता है इसमे किसी भी प्रकारका सदेह दृष्टिमे नही होता शङ्काकार कहता है कि नित्यत्वैकान्तका ग्रहण करने वाला प्रमाण उस विशेष दर्शनका बाधक है। अर्थात् जो यह कहा है स्याद्वादियो ने कि जीवादिक पदार्थ पूर्व पर्यायका त्याग करते हैं, उत्तर पर्यायका ग्रहण करते है इस दृष्टिमे बाधक प्रमाण कुछ नही है। सो बात सत्य नही है। यहां बाधक प्रमाण है और वह बाधक प्रमाण है नित्य एकान्तको सिद्ध करने वाला प्रमाण अर्थात् वस्तु नित्य ध्रुवस्वरूप है यह सिद्ध न उस विशेष दर्शनका बाधक है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि वस्तु नित्य ध्रुव अपरिणामी है। इस विकल्पका तो खण्डन भली प्रकार पूर्व प्रकरणमे कर ही दिया गया है।' कोई भी वस्तु कूटस्थ नित्य अपरिणामी नही होती। जो भी वस्तु है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। सामान्य स्वरूपसे द्रव्य रूप से तो वह वस्तु शाश्वत है, ध्रुव है, किन्तु उसमे प्रतिक्षण जो नवीन नवीन अवस्थायें होती हैं चाहे कहीं सदृश अवस्थायें हो और कही विसदृश अवस्थाये हों, किन्तु

प्रतिपत्तिकी अवस्थायें पूर्व पूर्व ही होती हैं। तो यों पर्यायदृष्टिसे वस्तु उत्पादरूप है और विनाशरूप है। तो वस्तुके विशेष वर्णनमें किसी भी प्रमाणसे वस्तुमें बाधा नहीं आती।

परस्परसापेक्षपनेसे प्रकट हुए उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्तकी वस्तुत्वका समर्थन—अब यदि कोई यहाँ यह शङ्का मनमें रखे कि अन्वयके देखनेसे स्थिति जानी गई और विशेषके देखनेसे उत्पादव्यय जाना गया तो अन्वयका ज्ञान होनेसे ही तो स्थिति बनी और विशेषका ज्ञान होनेसे उत्पादव्यय बना तो जिसका परिज्ञान भिन्न-भिन्न ज्ञानके ढङ्गसे हो रहा है ये पदार्थ क्यों न जुदे-जुदे समझे जायगे? और जब भिन्न-भिन्न ज्ञानके विषयभूत हैं तो स्थिति एक पदार्थ हुआ, उत्पाद उससे भिन्न पदार्थ हुआ। तो यों फिर ये तीनों भिन्न भिन्न पदार्थ बन जायेंगे। इस शङ्काके उत्तर में कहते हैं कि भिन्न प्रत्ययका विषय होनेके कारण उत्पाद विनाश और स्थितिको भिन्न-भिन्न पदार्थ रूपसे नहीं सिद्ध किया जा सकता अर्थात् यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो तत्त्व भिन्न ज्ञानका विषयभूत हो वह सत्त्वभूतसे स्वतन्त्र स्वतन्त्र ही सत्त्वान पदार्थ हुआ करे। यहाँ तो उत्पाद विनाश और स्थिति वस्तुके एकदेशरूप है और इस कारण वह नयज्ञानके विषयभूत है। यों समझना चाहिए कि उत्पाद व्यय और स्थिति ये तीनों ही समुदित हुए अर्थात् तीनोंको ही भिन्न भिन्न एक आधारमें जो उनकी अवस्थिति है उसीसे ही वस्तुकी व्यवस्था बनती है अर्थात् परस्पर सापेक्ष रूपसे प्रकट हुए उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही वस्तुस्वरूप कहलाते हैं और ऐसे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक सत् प्रमाणके विषयभूत हुआ करते हैं। अर्थात् प्रमाण ज्ञान द्वारा उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक वस्तु ही जाना जाता है। इस कारिकामें भी यह बताया है कि सहैकत्रोत्पादिसत् अर्थात् एक वस्तुमें एक ही साथ उत्पादव्ययध्रौव्यका होना यही सत् कहलाता है जैसे तत्त्वार्थसूत्रमें भी कहा गया है -उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। तो ऐसे उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त वस्तुका प्रमाणसे ज्ञान होता है और जब कभी इसमेंसे उत्पाद के स्वरूपपर विचार किया जाता है तब भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक वस्तु ही विचारा जाता है। वहाँ उत्पादव्ययको प्रधान करके विचारा गया है। तब वहाँ व्यय और ध्रौव्य गौण हो जाते हैं, पर ज्ञानमें जो कुछ आता है वह उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक पदार्थ ही आया करता है। इससे यह स्वीकार करना चाहिए कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक है न वहाँ नित्यत्वका एकान्त है न अनित्यत्वका एकान्त है।

अनुमान प्रमाणसे वस्तुकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताकी सिद्धि— वस्तु उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है यह सिद्धान्त युक्तिरहित नहीं है। इसकी सिद्धि अनुमान प्रयोगसे भी है। वह अनुमान प्रयोग इस प्रकार है कि वस्तु चलाचलात्मक है अर्थात् चल स्वरूप तथा अचल स्वरूप है, क्योंकि कृतकाऽकृतकात्मक होनेसे अर्थात् वह कृतक भी है और अकृत भी है अर्थात् जिसकी उत्पत्तिमें किसी परके व्यापारकी अपेक्षा हुई

है इस कारण तो कृतक स्वरूप है और द्रव्यरूपमे किसी भी परकी अपेक्षा नही हुई इस कारण अकृतक स्वरूप है, इस अनुमान प्रयोगमे प्रयुक्त हेतु असिद्ध नही है, क्योकि जब पूर्वरूपसे त्याग होता है तो नियमसे पर रूपका उत्पाद होता है। तो पूर्वरूपका त्याग होनेका अविनाभावी जो पररूपका उत्पाद है वह किसी पर पदार्थके व्यापारकी अपेक्षा रखता ही है इससे तो वस्तु कृतक है यह सिद्ध होता है। जैसे कि जल, गर्म हुआ तो जलके पूर्वरूप तो ठठापन था और उत्तररूप उसका गर्म होना हुआ तो पूर्वरूप का त्याग हुआ और गर्मीका उत्पाद हुआ इसमे अग्निके व्यापारकी अपेक्षा हुई है, अर्थात् अग्नि जली थी तब पानी गर्म हुआ है अतएव गर्म होना कृतक सिद्ध हो गया। यहाँ पर व्यापारसे प्रयोजन चेतनके व्यापारसे नही है। चाहे कोई चेतन पदार्थ निमित्त पडे अथवा अचेतन पदार्थ निमित्त पडे किसी न किसी परके निमित्तका सन्निधान पाकर ही पूर्व रूपका त्याग और उत्तररूपका ग्रहण होता है। जो पदार्थ अत्यन्त शुद्ध है अथवा सिद्ध भगवान हैं उनमे भी प्रतिक्षण पूर्वरूपका त्याग और अपर रूपका ग्रहण होता रहता है, क्योकि वस्तुकी वस्तुता इसी बातपर निर्भर है कि पूर्वरूपका त्याग हो और उत्तर रूपका ग्रहण हो। तब सिद्ध भगवन्त अथवा शुद्ध अणु या धर्मादिक पदार्थ इन सब पदार्थोंके पूर्वरूपके त्याग और अपररूपके ग्रहणमे चाहे वह सदृश ही उत्तरोत्तर रूप होता है फिर भी इस क्रियामे काल द्रव्य तो निमित्त होता ही है। तो और कालद्रव्यके लिए स्वय वह कालद्रव्य निमित्त है। तो यह उत्पाद विनाश किसी पर व्यापारकी अपेक्षा रखता है, इससे सिद्ध है कि वस्तु चल स्वरूप है और उत्पाद व्यय रूप है। तथा जब द्रव्य दृष्टिसे निहारते हैं तो स्थिर रहनेका स्वभाव किसी पर व्यापारकी अपेक्षा नही रखता है, इस कारणसे वह अकृतक है। यो प्रत्येक वस्तु कृतक स्वरूप और अकृतक स्वरूप होनेसे सिद्ध है कि वह चलाचलात्मक है। चलके मायने उत्पाद व्यय है और अचलके मायने ध्रौव्य है।

सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे सत् हुए पदार्थमें अतिशयान्तरकी उपलब्धि होनेसे वस्तुकी उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मकताकी सिद्धि--चेतन हो अथवा अचेतन हो किसी भी पदार्थकी सर्वथा उत्पत्ति नही होती है। अर्थात् पर्यायरूपसे उत्पत्ति होती है क्योकि द्रव्य रूपसे उत्पन्न नही होता। तब ऐसी स्थितिमे यह निहारने से आ रहा है कि सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे तो पदार्थ सत् ही है। अब उस ही सत् पदार्थसे ही अतिशय विशेष उत्पन्न होता है और इस ही प्रक्रियासे पर्यायोकी उत्पत्ति होती है। जैसे कि मिट्टी सामान्य स्वभावसे सत् है किन्तु उसमे घट पर्यायका अतिशय आ गया। अतिशय उसे कहते हैं कि जो पहिले न हो और अब प्रकट हो जाय। तो ऐसा अतिशय जब देखा जा रहा है तो उससे सिद्ध है कि पदार्थ कथञ्चित् उत्पाद व्यय स्वरूप है। तो यो पदार्थ कथञ्चित् उत्पाद व्यय स्वरूप है और कथंचित् ध्रुव हैं। तो किसी भी पदार्थकी उत्पत्ति सर्वथा सिद्ध नही होती, इसी प्रकार किसी

भी पदार्थका विनाश भी सर्वथा नहीं होता, क्योंकि सत्त्व आदिक सामान्य स्वभावसे पदार्थ सत् ही रहता है और उसमें अन्य अतिशय पाया जाता है। तो जो अपूर्व पर्याय उत्पन्न हुई तो उस हीके मायने है पूर्व पर्यायका विनाश होना। तो यह विनाश भी सर्वथा नहीं है किन्तु कथञ्चित् है, इसी प्रकार किसी पदार्थकी सर्वथा स्थिति भी नहीं रहती है क्योंकि जो ही पदार्थ विशेषाकार रूपसे उत्पन्न होता है और विशेषाकार रूप से विनष्ट होता है उस ही पदार्थमें सत्त्वादिक सामान्य रूपसे स्थिति पायी जाती है। अर्थात् जैसे घट मिला कपाल उत्पन्न हुए फिर भी मृत स्वरूप पाया ही जा रहा है। तो जैसे वहाँ मृतस्वरूपकी दृष्टिसे ध्रुव है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे ध्रुव रहा करते हैं।

पर्यायकी स्वभाव विशेषानुसारिता होनेसे सत्त्वादिकसे घटादिकी उत्पत्ति होनेके प्रसङ्गका अनवकाश—अब यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि सत्त्वादिक सामान्यसे सत्‌को तंतु आदिक भी हैं उनसे फिर घटाकार जैसा अतिशय विशेष उत्पन्न होने लगेगा फिर। जब ऐसा नियम बना दिया कि सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे सत् पदार्थमें ही अतिशय विशेष पाया जाता है इनसे वह उत्पादव्यय स्वरूप है तो सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे सत् हैं तंतु आदिक उनमें घटाकारका अतिशय फिर बन जाय याने तंतुवोंसे घडा बन जाना चाहिए, ऐसे नियममें यह प्रसङ्ग आता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि सत्त्वादिक सामान्यसे सत् रहने वाले पदार्थमें ही अतिशय विशेष बनता है यह कहा है, किन्तु इसमें स्वभाव शब्द और जोडा गया है अर्थात् सत्त्वादिक सामान्य स्वभावसे सत् पदार्थमें अतिशय विशेष पाया जाता है। तो उस स्वभाव ग्रहणसे यह अर्थ लेना कि जिस जातिके पदार्थमें जो स्वभाव विशेष पाया जाता है उसके अनुकूल ही वहाँ अतिशय बनेगा सत्त्वादिक सामान्य जो कि स्वभावभूत है तो घटमें भी सत्त्व सामान्य है पर उसको अब एक विशिष्ट उपादानरूपसे तकते हैं जो घटका उपादान द्रव्य असाधारण है अर्थात् सभी सत्त्व वाले पदार्थ घटके उपादान नहीं हो जाते हैं, तब ऐसी स्थितिमें घटका उपादान द्रव्य मृत सामान्य स्वभावसे परिणमता हुआ पाया जाता है। जब केवल कार्यादिककी अपेक्षा न रखकर केवल सत्त्व ही सोचा जा रहा हो तब तो वह सत्त्व सर्वव्यापी है, किन्तु किसी कार्यकी बात का प्रसङ्ग रखकर फिर सामान्य स्वभावकी बात सोची जा रही हो तो उस कार्यका उपादान द्रव्य जो असाधारण है वह उसके व्यापी स्वभावसे परिणम जायगा। परिणमनेका अर्थ यहाँ बनता नहीं कह रहे हैं क्योंकि सर्वसाधारण स्वभाव अब किसी असाधारण स्वभावरूपसे कहा जायगा। तब घटकी उत्पत्तिकी व्यवस्था बनाते हैं तो घटका उपादान कारण रूप जो मिट्टी सामान्य है वह सत् स्वभाव कहलाया। वहाँ तो ऐसी स्थितिमें मृत स्वरूपसे ही सत् हुए पदार्थमें जो अतिशय विशेष बना वह घटादिक है, तंतु उपादानमें घट पर्यायका अतिशय नहीं बनता है। तो जैसे उस मृत द्रव्य

स्वभावसे सत् होने वाले पदार्थमे जो अतिशय आया है वही घट है सो वह जैसे प्रतिनियत घटके योग्य मिट्टी आदिक रूपसे है उस तरह वह अन्य साधारण स्वभावसे नहीं है अर्थात् तंतु आदिकमें पाये जाने वाले सामान्य स्वभावसे वह अतिशय नही पैदा हो सकता। तंतुवोसे अतिशय बनेगा तो तंतुवोके अनुकूल ही रहेगा। कपडा आदिक बन जायगा पर घटकार्यकी उत्पत्ति तो घटकार्यके अनुकूल उपादानसे मृद् द्रव्य स्वभाव से ही उत्पन्न होगा। तो वह घट अपने योग्य मृत द्रव्यादिक स्वरूपसे होता है पर तंतु आदिकके पाये जाने वाले सामान्य स्वरूपसे भी नही होता और सर्व साधारण स्वभाव सत्त्व सामान्यरूपसे भी नही कहा जा सकता और न साधारण असाधारण रूपमे कहा जा सकता। साधारणका अर्थ है मृतपिण्ड और तंतु आदिकमे पाये जाने वाले सामान्यमे स्वभावसे भी घटका अतिशय नही बना और असाधारणके मायने पार्थिवत्व या रूपत्व उन स्वभावरूपसे भी नही बना। जैसे कि मिट्टीका घडा बन गया तो पत्थर आदिक भी पार्थिव हैं उनसे घडा न बनेगा। तो साधारण असाधारण स्वभाव से भी घट अतिशय नही बनता। तब इससे सिद्ध होता है कि मृत द्रव्य स्वभावसे सत रहने वाले पदार्थमे ही घट अतिशयकी उपलब्धि है, तंतु आदिक सामान्यमे घटकी उपलब्धि नही हो पाती।

विवक्षित पर्यायके प्रागभावस्वरूप सत्मे ही विवक्षित पर्यायकी उत्पत्ति होनेसे प्रध्वंसाभाव स्वरूप सत्मे उसकी उत्पत्तिके प्रसङ्गका अभाव

अब यहा शङ्काकार कहता है कि जब वह घट कार्य ही न था तब ही तो घट कार्य हुआ याने घटके अभाव होनेपर ही तो घट हुआ। न था घट पहिले मृतपिण्ड ही था तो घट असत था उस ही घटकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा कहा जा रहा है। तो घटके विनाशके उत्तर समयमे भी चूंकि असाधारण मिट्टी आदिक सामान्य स्वभावसे सत्त्व तो है ही तब फिर वहाँ भी घटकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग आ जायगा। तब घटकी उत्पत्तिका यह ढङ्ग बताया कि मृत स्वभावमे तो सत हुआ और घटरूपसे असत हुआ, तो वहाँ घट बन जाता है। तो जब घट फूट गया तो ऐसी स्थितिमे भी यह बात पाई जा रही है कि माटी सामान्यसे तो सत है और घटाकाररूपमे असत है तो घट विनाश के बाद भी घटकी उत्पत्ति हो जानी चाहिये, किन्तु ऐसा है तो नही। इस शङ्काके उत्तरमे कहते है कि यद्यपि घटके विनाशके बाद भी असाधारण माटी आदिक सामान्य स्वभावका सत्त्व पाया जा रहा है तो भी वहाँ घटकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग नही होता, क्योकि घटके प्रागभावस्वरूप सत्मे ही घटभावकी उत्पत्ति हुआ करती है। यद्यपि घटका विनाश होनेके बाद भी घटका अभाव है लेकिन घटकी उत्पत्ति एक प्रध्वंसात्मक अभाव न चाहिए, किन्तु प्रागभावात्मक अभाव चाहिए अर्थात घट बनने से पहिले क्षणमे जो घटका अभाव है उस रूपसे जो सत है उस सतसे घट अतिशयकी उपलब्धि होती है। इसी कारण घटके विनाशके बाद यद्यपि अभावात्मक सत है

और वह है प्रध्वसात्मक सत तो भी वहा घटकी उपलब्धि नही होती। घटका प्राग-भावरुप सत हो उससे ही घटकी उपलब्धि होती है।

विवक्षित कार्यके प्रागभावकी भावस्वरूपता होनेसे सर्वथा असत्‌की उपपत्तिके वचनका अप्रयङ्ग—शङ्काकार कहता है कि इस तरह तो तब यह नियम बन गया कि पहिले असत हो तब ही उत्पत्ति होती है। तो इसके मायने है असतकी उत्पत्ति हुई। सो इस कथनसे घटका कथञ्चित प्राग असत्त्व है, यह कहना तो युक्त नही बैठता। तब तो यह ही कह देना चाहिए कि घटका सर्वथा असत्त्व है। घट बननेसे पहिले घटका सर्वथा असत्त्व है, यह बात कहना युक्त हो सकेगा। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यद्यपि साधारण शब्दोमें यह कहा है कि पहिले असत हो तब ही उत्पत्ति होती है मायने घटका प्रागभाव है तो उस सतसे घटकी उत्पत्ति होती है, ऐसा कहनेमे यह दोष नही दे सकते कि फिर तो घटका कथञ्चित प्राग असत है यह बात अयुक्त है, किन्तु न यह उपालम्भ दे सकते कि सिद्धान्त यह है कि प्राग अभाव भावस्वरुप होता है, और इस सिद्धान्तको पहिले युक्तिपूर्वक अच्छी तरह सिद्ध किया जा चुका है। जैसे घटका प्रागभाव क्या है ? मृतपिण्ड ! जिस पर्यायके बाद घट पर्याय बनती है वह पर्याय घटका प्रागभाव कहलाता है। तो प्रागभावका अर्थ बिल्कुल अभाव नहीं है किन्तु किसी न किसी पर्यायके सद्भावरुप है। घटका प्राग-भाव मृतपिण्डके सद्भावरुप है, तो प्रागभाव भावस्वभाव होता है, यह सिद्धान्त मान लेनेपर यह बात नहीं कही जा सकती कि घटका अघटकी उत्पत्तिसे पहिले सर्वथा असत्त्व है। कथञ्चित् असत्त्व अर्थात् घटाकार रुपसे असत्त्व है और घटकी पूर्व-भावी पर्यायरुपसे सद्भाव है। यदि प्रागभावका सर्वथा अभाव स्वभाव ही मान लिया जाय तब बायें दायें सींगकी उत्पत्ति एक साथ है ना ? किसी बछडेके सिरपर दाहिने बायें दोनो सीग उत्पन्न होते हैं तो वे एक साथ उगे तो एक साथ जिनकी उत्पत्ति हो रही है उनमे फिर उपादानका सांकर्य हो जायगा। जब प्रागभावको किसी वस्तुके सद्भावरुप नहीं मान रहे हो और केवलमात्र अभावरुप ही मानते हो तो एक साथ जो दो सीग उत्पन्न हुए हैं उनके उपादानकी प्रतिनियत व्यवस्था न बन सकेगी क्योंकि उपादान अब सद्भावरुप रहा ही नहीं। प्रागभाव दोनो जगह समानरुपमे पाया जा रहा है, क्योंकि प्रागभावका अभाव स्वरूप मान लिया है। इस स्थितिमे एक साथ उत्पन्न होने वाले सींगोमें उपादानका प्रतिनियम न रहेगा। इस कारण जैसे बायी सीग अपने उपादानसे उत्पन्न होती है उसी प्रकार दाहिनी सीगके उपादान से भी बायी सींग उत्पन्न होने लगेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रागभाव है और उसीसे ही उपादानकी व्यवस्था बनती है ? वह प्रागभाव अन्य पदार्थके सद्भाव स्वरूप है।

भावस्वरूप प्रागभावविशिष्ट सत्‌की उपादानताके अतिरिक्त अन्य

नियमकल्पनाओंकी असंगतता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जिस प्रदेशमे जिस समय जिस कार्यका प्रागभाव है उस प्रदेशमे उस समय उस कार्यकी उत्पत्ति हुआ करती है ऐसे नियमकी कल्पना कर लेंगे और उसमे व्यवस्था बन जायगी फिर प्रागभावको भाव स्वरूप माननेकी क्या आवश्यकता है ? इस शङ्काके उत्तरमे कहते है कि जो बताया है शङ्काकारने कि जिस जगह जिस समय जिस कार्यका प्रागभाव होगा उस समय उसकी उत्पत्ति हो जायगी । तो ऐसे नियमकी कल्पना तो वहाँ भी हो सकती । तो ऐसे नियमकी कल्पना तो वहाँ भी हो सकती है जहाँ उपादान अन्य है और कार्य कुछ अन्य बताया जाय । अर्थात् दाहिने सीगके उपादानसे बायें सीगका उत्पन्न होना हो जायगा यानें उस बायें सीगको उत्पन्न होनेके लिए प्रागभाव चाहिए और प्रागभाव है अभाव स्वरूप जो सर्वथा अभाव दाहिने प्रदेशमे भी है और बायें प्रदेशमे भी है तब तो किसी भी उपादानसे बायाँ सीग उठ जाना चाहिए । और फिर यह बतलाओ कि बायें सीगका अपने निजका यह उपादान है और यह अन्य उपादेय है ऐसा नियम भी आप कैसे बना सकेंगे ? यदि कहा कि प्रागभावके नियमसे यह नियम बन जायगा । जिसका जहाँ प्रागभाव है वह उसका उपादान है । ऐसा बिना विचारे उत्तर देनेपर यह बतलाओ कि एक साथ समान समयमे उत्पन्न होने वाले उन दोनो सीगोंका वह ही प्रागभाव कैसे हुआ ? प्रागभाव नियम किस कारणसे बना लिया ? यदि कहो कि उस विषाणमे उत्पन्न होनेके नियमसे बना दिया कि चूंकि वहाँ यह बाँया सीग ही उत्पन्न हो रहा है इसलिए यही प्रागभाव है यहाँ तो कहते हैं कि उस विषाणकी उत्पत्तिका नियम भी किस तरहसे बनेगा ? यदि कहोगे कि वह अपने उपादानके नियमसे बन जायगा तब फिर यह प्रश्न होता कि यह अपना उपादान है कि भिन्न उपादान है यह नियम कैसे बनेगा ? तो इस तरह ये सब प्रश्न बार बार उठते उठते जायेंगे । तो यो चक्रक दोष हो जाता है । तो प्रागभावको यदि तुच्छाभाव माना जाय, भाव स्वभाव न मान कर सर्वथा रिक्त स्वभाव माना जाय तो कहीं व्यवस्था नहीं बन सकती है और यह आपत्ति प्रसङ्ग आता है । कदाचित शङ्काकार यह सोचे कि बायें सींगकी उत्पत्ति हुई है ऐसा ज्ञान विशेष होनेसे उत्पत्तिका नियम बन जायगा तो उत्तर इसका क्या दें यह तो अविवेक पूर्ण वचन हो गया कि उत्पत्तिकी ही तो विचारणा चल रही थी और उसी उत्पत्तिके ज्ञानको कारण बता रहे हो तो शङ्काकाराभिमत उत्पत्ति पक्षकी बात तो सही होती नही ।

ज्ञापकपक्षमे यथार्थ उपादानोपादेयभावकी अव्यवस्था - कदाचित ज्ञापक पक्षकी बात कहने लगे शङ्काकार कि वहाँ ज्ञान हुआ उसे बना दिया तो उस प्रागभाव के ज्ञान विशेषसे प्रागभावका नियम और उत्पत्तिका नियम भी लें । अब ज्ञान विशेषमे तो जो गया अब उत्पत्तिसे सम्बन्ध क्या रहा ? और, तब उत्पत्तिके द्वारा प्रागभावका कुछ बोध न हो सका, और यदि प्रागभावसे भी उत्पत्तिके नियमका निश्चय करोगे तो

प्रकट इतरेतराश्रय दोष आ जाता है कि जब उत्पत्तिके नियमका निर्णय बने तब प्रागभाव सिद्ध हो और जब प्रागभाव सिद्ध हो तो उत्पत्तिके नियमका निर्णय बनेगा। सो जब प्रागभावको अभाव स्वभाव माननेपर उपादानमें सांकर्यका प्रसङ्ग आता है तब मान ही लेना चाहिए कि उत्पत्तिसे पहिले जो प्रागभाव है कार्यका, वह अभावात्मक नहीं है, किन्तु भाव स्वभाव है। किसी अन्य पर्यायके सद्भाव रूप है और वे प्रतीतिमें भी आ रहा है। तब निष्कर्ष यह निकला कि प्रागभावका अभाव ही कार्यका उत्पादरूप होता है। जैसे घटके बाद खपरियाँ ही बनतीं हैं। खपरा बना, तो खपरियों का प्रागभाव हुआ अब घट था ने खपरियोंसे पहिले जो स्थिति हुई वह है प्रागभाव और उस प्रागभावका अभाव हुआ खपरियाँ बन गईं तब यही तो निर्णयमें आया कि प्रागभावका अभाव कार्यके उत्पादरूप होता है। यही बात स्वामी समन्तभद्राचार्यकी कारिका वचनमें देखिये।

कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक् ।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥५८॥

प्रागभावाभावके कार्योत्पादरूपत्वका अनुमान प्रयोगमें समर्थन— कार्यका उत्पाद क्या है? जो हेतुका क्षय है सो ही कार्यका उत्पाद है। अथवा यों कहो कि कार्यका उत्पाद और हेतुका क्षय अर्थात् उपादानका क्षय ये दोनों एक ही चीज हैं क्योंकि दोनों एक हेतुसे उत्पन्न हुए हैं। जैसे मुद्गरके प्रहारसे घटकी खपरियाँ बन गईं तो खपरियाँ बननेका कारण क्या बना? मुद्गरका प्रहार और घटके विनाश का कारण क्या बना? मुद्गरका प्रहार। तो कार्यकी उत्पत्तिका और पूर्व पर्यायके क्षयका कारण एक ही कुछ है इससे यह सिद्ध है कि उत्तर पर्यायके उत्पादका ही नाम पूर्व पर्यायका विनाश है, ऐसा सुननेपर कोई यह न आशङ्का कर ले कि जब उत्पाद और विनाश एक हेतुमें बन गए तो उत्पाद और विनाशमें अभेद हो जायगा। उसी को उत्पाद कह लो, विनाश कहलो। सो ऐसा नहीं। यहाँ लक्षण दृष्टिसे उत्पाद और विनाश पृथक हैं बुद्धिमें आरहा है कि खपरियोंका उत्पाद होता है और घटका विनाश होता है। वे दोनों एक नहीं हो जाते क्योंकि उनका स्वरूप निराला निराला है और एक साथ ही यह भी समझना चाहिए कि वे सब अपेक्षारहित नहीं हैं। उत्पाद निरपेक्ष विनाश कुछ नहीं, विनाश निरपेक्ष उत्पाद कुछ नहीं। यदि उत्पादादिमें अनपेक्षा है तो वस्तु ही न बनेगी। इससे यह निर्णय रखना चाहिए कि उपादानका पूर्व आकारसे विनाश हो जाय यही कार्यका उत्पाद कहलाता है और क्यों ये दोनों बातें एक ही कहलायीं कि दोनोंका हेतु एक है, जो उपादानके क्षयसे अन्य है उस हेतुसे क्षय होनेका नियम नहीं देखा गया है। जैसे कि जो अनुपादानका क्षय है या अनुपादेय का उत्पाद है वह किस तरहसे होगा? वह तो अवस्तु ही है। कहीं अनुपादानका क्षय देखा गया, कहीं अनुपादेयका उत्पाद देखा गया। इसी प्रकार यदि यहाँ उत्तर आकार

के उत्पादका और पूर्व आकारके क्षयका एक हेतु न माना जाय तो यह उत्पाद विनाश सिद्ध नहीं हो सकता। तो उपादानके क्षयका और उपादेयके उत्पादका हेतु एक है, ऐसा नियम देखा जाता है, इस कारण उपादानके क्षयको ही उपादेयका उत्पाद कहते हैं। जैसे घटके विनाशको ही खपरियोका उत्पाद कहते हैं। तो घट तो हुआ उपादान और खपरियाँ हुई उपादेय। जो कार्य बने, जो उत्पन्न हो वह तो है उपादेय और जिसके क्षय होनेपर कार्य बने वह है उपादान। तो यहाँ अनुमान प्रयोग हो गया कि कार्यके उत्पादका ही नाम उपादानका क्षय है क्योंकि इन दोनोके होनेका हेतु एक है, यह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि कार्यका तो हुआ उत्पाद, कारणका हुआ विनाश ये दोनों ही बातें एक हेतुक होती हैं यह नियम आबालगोपाल प्रसिद्ध है। किसी घटमें मुद्गर मार दिया तो तुरन्त ही घटका विनाश हुआ, खपरियाँ उत्पन्न हो गयीं। तो खपरियाँ उत्पन्न हुई उसका भी कारण मुद्गर प्रहार है, घट नष्ट हुआ उसका भी कारण मुद्गर प्रहार है। क्षणिकवादमें यह माना गया है कि उत्पाद विनाशमेंसे उत्पाद तो सहेतुक है और विनाश अहेतुक है। इस सम्बन्धमें भले प्रकार पहिले मीमांसा की गई है और वहाँ यह पक्ष निराकृत हो गया है। सिद्धान्त वहाँ यह प्रसिद्ध हुआ कि उत्पाद भी सहेतुक है और विनाश भी सहेतुक है॥

उत्पादव्ययका एकहेतुत्वकी असिद्धिका नैयायिक शङ्काकारका कथन

अब यहाँ शङ्काकार नैयायिक कहता है कि कारणके क्षयका और कार्यके उत्पादका हेतु एक बताना यह प्रमाणबाधित है। देखिये! उपादान घटका विनाश हुआ तो किस तरह हुआ? किसी बलवान पुरुषने मुद्गरका प्रहार किया। तो बलवान पुरुष से प्रेरित मुद्गर आदिकका अभिघात होनेसे हुआ क्या वहाँ कि अवयवोमें क्रियाकी उत्पत्ति हो गई याने अब जिन अवयवोंमें क्रिया खपरियाँ बनती हैं उन अवयवोंमें क्रिया उत्पन्न हो गई और तब अवयवोंके विभागसे अथवा संयोगके विनाशसे ही घटके विनाशकी प्रतीति हुई। परन्तु उपादेय खपरियोंके उत्पादकी बात भी तो सुनो! वहाँ खपरियों के आरम्भक जो अवयव हैं उनमें कर्मका संयोग विशेष हुआ और उससे ही यह ज्ञान बना कि खपरियाँ उत्पन्न हुई। व उत्पाद और विनाशको एक हेतुसे उत्पन्न होनेका नियम कैसे सम्भव हो सकेगा? इस कारण स्याद्वादियोका यह मानन वचन असिद्ध है।

कार्योत्पाद व कारणविनाशके सम्बन्धमें अवयवक्रिया व संयोगविनाश आदि कुछ भी पद्धति माननेपर भी एकहेतुताकी सिद्धिका समाधान

उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शङ्का करने वाले पुरुषने एक ऐसी प्रक्रियाकी घोषणा की है जो किसी भी वर्तमान पुरुषके प्रतीतिमें नहीं आ सकता। विनाशका कारण क्या है? उत्पादका कारण क्या है? उनका जो यह ढङ्ग बताया है वह ढङ्ग प्रतीति विरुद्ध है। ढङ्ग यहाँ तो कहा गया कि घटका विनाश यो होता है कि मुद्गर

के अभिघात होनेसे अवयवमें क्रिया उत्पन्न हुई और उस क्रियासे अवयवके विभाग बना। और अवयवका विभाग होनेसे संयोगका विनाश हुआ। उससे घटका नाश मानते। कितना विचित्र बड़ा व्यायाम किया जा रहा है कि लोग निरखते हैं मुद्गर मारा और घट फूट गया लेकिन यहाँ एक हेतुका विरोध करनेके लिए हम तरह पैंतरा बदलकर कह रहे हैं कि उस मुद्गर प्रहारसे अवयवोंमें क्रिया उत्पन्न हुई और उस क्रियासे अवयवमें विभाग बन गया उस विभागसे संयोगका विनाश हो गया उस संयोग विनाशसे उपादान घटका विनाश बना। यह तो बताते हैं नैयायिक विनाशकी प्रक्रिया और उत्पादकी प्रक्रिया किस ढङ्गसे कहते कि वहाँ उन उपरितोंका आरम्भ करने वाले अवयवोंमें हुआ कर्मका संयोग। अवयवोंका कर्म क्या है ? परमाणु आदि का गमन करना आदिक क्रिया। उस क्रिया संयोग विशेषसे ही फिर वहाँ कपालका उत्पाद हुआ और इस तरह कहकर दो ढङ्ग साबित करते हैं और उपादान अथवा उपादेय उत्पादका हेतु विभिन्न बनानेका प्रयास कर रहे हैं लेकिन ऐसा किसीकी प्रतीतिमें ही नहीं आ पाता। हुआ यो यहाँ यह कि बलवान पुरुषके द्वारा प्रेरित मुद्गर आदिकका व्यापार हुआ कि उस व्यापारसे ही घटका विनाश हुआ और कपालका उत्पाद हुआ। तब बताओ कि घटके अवयव भूत कपालमें ही क्रिया उत्पन्न हुई, ऐसा माननेपर फिर यही क्यों नहीं मान लिया जाता कि वही एक हेतु दोनोंका बन गया। कपालमें जो क्रिया हुई वही घट विनाशका कारण है वही कपाल उत्पादका कारण है। यदि शङ्काकार यह कहे कि क्रियासे तो अवयव विभागकी ही उत्पत्ति होती है तब फिर वही एक कारण इन दोनोंका मान लीजिए। यदि कहो कि विभागसे तो उन अवयवोंके संयोगका विनाश ही देखा जाता तो चलो यो भी वही एक कारण उत्पाद और विनाश दोनोंका मान लीजिये। यदि कहो कि वहाँ अवयवके संयोग विनाशसे अवयवी घटका विनाश हुआ अरे तो वही एक हेतु घटके अवयव रूप कपालके उत्पाद का कारण मान लीजिए। किसी भी तरह कुछ भी कहो उत्पाद और विनाश दोनों का एक हेतु है यह नियम अबाधित सिद्ध होता है और इतना तो सभी लोगोंकी प्रतीति में आ रहा है कि बड़े स्कंधोंके अवयवोंका संयोग विनाश होनेसे लघु स्कंधकी उत्पत्ति हो गयी। सूत्रकारका वचन भी इस प्रकार है कि भेद और संघातोंसे स्कंध उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कार्यका उत्पाद और उपादान कारणका क्षय ये दोनों एक हैं और इनका कारण भी एक है।

भेद, संघात व भेदसंघातसे स्कंधोंकी उपपत्तिपर चर्चा समाधान—शङ्काकार कहता है कि भेद और संघातसे स्कंध उत्पन्न होता है ऐसा सिद्धान्त अथवा जो सूत्रकारका वचन है वह मिथ्या है क्योंकि उसमें बाधक प्रमाणका सद्भाव है। बाधक प्रमाण उसमें क्या है सो सुनो ! अपने प्रमाणसे अल्प परिमाण वाले कारणोंसे तैयार हुए कपाल हैं कार्य होनेसे कपालकी तरह। जैसे कि कपड़ा अपने परिमाणसे

अल्प परिमाण वाले कारणसे रचित होता है अर्थात् कपड़ा तो है बहुत परिमाण वाला और सूत है अल्प परिमाण वाला तो अल्प परिमाण वाले कारणोंसे कपड़े रचित होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि घटसे जो कपाल बनी वे अपने परिमाणसे बड़े परिमाण वालेसे बनी हैं जो कि इस अनुमानसे विरुद्ध जाते हैं। अतः बड़े परिमाणसे छोटे परिमाण वाले कार्योंकी उत्पत्ति नहीं होती। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि शङ्काकारका उदाहरण साध्यरहित है। यह शङ्काकार बताये कि जिन तंतुओंमें पटकी उत्पत्ति मानी है वे तंतु क्या अपटाकारसे परिणत हैं, तब पटके समवायी हैं या पटाकारसे परिणत हैं तब पटके समवायी हैं, नैयायिक जन तंतुओंको पटका समवायी कारण मानते हैं और यहाँ वह कह रहे हैं कि अल्प परिमाणसे बड़े परिमाण वाले कार्योंकी उत्पत्ति होती है। तंतुओंको अल्प परिमाण वाले कहते हैं और पटको बहु परिमाण वाले तो यहाँ वे यह बतायें कि वे तंतु जो पटके समवायी हुए हैं क्या पटाकार परिणत न होकर कारण हुए हैं या पटाकार परिणत होकर कारण हुए हैं? इसमें यह तो कह नहीं सकते कि वे तंतु पटाकारसे परिणत नहीं हुए और पटके समवायी कारण बन गए, क्योंकि पटाकारसे जो परिणत नहीं हुए हैं ऐसे तंतुओंमें "इसमें पट है" यह ज्ञान होता ही नहीं है। यदि द्वितीय पक्ष लेते हो अर्थात् पटाकार परिणत हुआ तंतु पटके समवायी कारण बनते हैं, यदि ऐसा पक्ष स्वीकार करते हो तो देख लीजिए पटपरिमाणसे अल्पपरिमाण वाले तन्तु पटके कारणभूत न रहे। पटका परिमाण तो है बहुत बड़ा और उससे अणु परिमाण है तंतुओंका, किन्तु पटाकारपरिणत तन्तुओंको पटका कारण कहा। सो अब शङ्काकारोक्त दोष स्याद्वादियोंके सिद्धान्तमें न रहा क्योंकि उन सब तंतुओंका पटके समान ही परिमाण है इस रूपमें प्रतीति हो रही है। आखिर आतान वितानके आकाररूपसे मिले हुए तंतुओंकी ही तो पट पर्यायोंके प्रति आश्रयता हुई है। अन्यथा अर्थात् आतान वितानके आकारमें परिणत नहीं हुए तंतुओंको तो यदि पट परिणामका आश्रय कहा जाय तो जो किसी गुत्थीमें ही उलझे हुए तंतु हों या किसी बाँसमें ही लिपटे हुए तंतु हों तो उनके भी पट परिणामका प्रसङ्ग आ जायगा। और वास्तविक भी यह है कि पट स्वरूपसे परिणत न हुए तंतु पट स्वरूप नहीं कहलाते हैं और ऐसा सिद्धान्तका वचन भी है कि उस असाधारण रूपसे होनेका नाम तद्भाव है और उस ही को परिणाम कहते हैं।

परिणाम और परिणामीमें कथञ्चित् अभेदकी सिद्धि—यहाँपर कोई पुरुष आशङ्का न रखे कि इस तरहसे तद्भावको परिणाम मान लेनेपर परिणाम और परिणामीमें अभेद हो जायगा। परिणाम और परिणामी यद्यपि एक आधारमें हैं तो भी उनमें अभेद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञानके भेदसे भेद अङ्गीकार किया गया है। अतएव कथञ्चित् भेद सिद्ध होता है। शङ्काकार नैयायिकके सिद्धान्तसे उनका

भेद माननेमे कोई विवाद नहीं है और ततु द्रव्य एव पटप.यिका अन्वयव्यतिरेक रूपसे परिचय भी मिलता है स्वय नैयायिकोने माना है और लोग भी समझते हैं कि ततुओ के होनेपर पट बनता है, ततुओंके न होनेपर पट नही बनता। यो अन्वय व्यतिरेक ज्ञानका विषय होनेसे उनमें भेद सिद्ध है। यो तद्भाव परिणाम होकर भी उनमे अभेदका प्रसङ्ग नहीं आता। यहाँ ततु द्रव्य प्राचीन अपटाकारका परित्याग करता है अर्थात् जो वह तंतु पटरूप जब न परिणमा था ऐसी स्थितिमें वह ततु पिण्ड था सो उन आकारोका परित्याग करके और ततुस्वरूपका परित्याग न करके अपूर्व पटाकार रूपसे परिणमते हुए पाये जाते हैं अर्थात् वे ही ततु जो कपडेके आकारमे न थे सो कपडेके आकार न थे उन आकारोंका तो त्याग किया मगर ततुस्वरूपका त्याग नही किया क्योकि कपडा बुने जानेपर भी ततु जिस रूपमे है उन ही रूपमें है लेकिन अब अपूर्व पटाकाररूपसे परिणम गया। तो अब यह जो पटाकार है यह पूर्व आकारसे भिन्न आकार है। इस तरहसे यह सिद्ध हो गया कि ततुओके होनेपर ही पट होता है और ततुओके न होनेपर पट नहीं होता है। यदि सर्वथा व्यक्त रूप ही जाय ऐसा ततु पिण्डमे फिर उपादानता नही बन सकता। जिसने अपना पूर्वरूप नहीं छोडा ऐसा ततु समूहका पटके प्रति उपादानपना नहीं बन सकता है। जैसे अन्य पदार्थोंमें भी घटित कर लीजिए! मृत्पिण्डसे घट बने तो घटका उपादान कारण है मृतपिण्ड सो मृतपिण्डके आकारका त्याग हो न और वह उपादान बन जाए यह सिद्ध नहीं होता।

असाधारण द्रव्यप्रत्यासत्ति व भावप्रत्यासत्तिसे उपादानोपादेयभावकी व्यवस्था—उपादान उपादेय भाव होनेका कारण है द्रव्यप्रत्यासत्ति और भावप्रत्यासत्ति। केवल भाव प्रत्यासत्ति अथवा केवल काल प्रत्यासत्ति अथवा देश प्रत्यासत्ति उपादान उपादेय भावका कारण नहीं है जिसका सीधा अर्थ यह है कि पूर्वपर्याय सयुक्त द्रव्य उपादान कारण होता है। तो यो कार्यकी प्रत्यासत्ति द्रव्य और भावकी प्रत्यासत्ति होना चाहिए। भावप्रत्यासत्तिका अर्थ है उससे अनन्तर पूर्व होने वाली पर्याय होना चाहिए। द्रव्यप्रत्यासत्तिका अर्थ है कि पर्याय निराकार नहीं होते। तो जिस द्रव्यमें पूर्वपर्याय थी द्रव्य वही रहता है उत्तर पर्यायमे भी। इस तरह द्रव्य और भाव प्रत्यासत्ति मात्रसे उपादान उपादेय भाव मान लिया जाय तो समान आकार वाले समस्त पदार्थोंमे भी उपादान उपादेय भावका प्रसङ्ग हो जायगा, क्योकि अब तो केवल भावप्रत्यासत्ति ही मान ली गई। तो जिन–जिन पदार्थोंमे उस–उस प्रकारकी पर्याय और आकार पाये जा रहे हों, ऐसे सभी पदार्थोंमे उपादान उपादेय भाव बन बैठेगा। तब यो कह लीजिए कि दुनियामे जितनी जगह वे ततु पिण्ड रखे हुए हैं वे सभी तंतु पिण्ड उस पटके उपादान बन बैठेंगे। क्योकि भावप्रत्यासत्ति तो पाई गई। इस कारण यह जानना चाहिए कि केवल भावप्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था नहीं है, कालप्रत्यासत्तिसे भी उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था नहीं है।

कालप्रत्यासत्तिका अर्थ यह है कि पूर्व और उत्तर कालमे जो पदार्थ हो. जिसके बीचमें कोई कालमे अन्तर न आये ऐसे पदार्थोंमे हुआ करती है कालप्रत्यासत्ति। सो काल प्रत्यासत्तिमे उपादान उपादेय भाव माना जाय तो पूर्वक्षणवर्ती और उत्तरक्षणवर्ती समस्त पदार्थोंमे उपादान उपादेय भाव होनेका प्रसङ्ग हो जायगा। क्योंकि जैसे कि जो ८ बजकर ४थे समयमे पदार्थ है तो ऐसे अनन्त पदार्थ हैं और ५ वें समयने भी अनन्त पदार्थ हैं। तो सारे पदार्थ उन सारे पदार्थोंके उपादान बन बैठेंगे क्योंकि काल की प्रत्यासत्ति (एकता) तो पाई गई अतएव काल प्रत्यासत्तिसे भी उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था नहीं बनती, देश प्रत्यासत्तिसे भी उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था यदि मान ली जाय तो समान देशमे रहने वाले मृत्पिण्ड आदिकके समस्त रूपसे सब को उपादान उपादेय भाव बन बैठेगा। इस कारण देशप्रत्यासत्ति भी उपादान उपादेयका कारण नहीं है। इसी प्रकार साधारण द्रव्य प्रत्यासत्ति भी उपादान उपादेय भावका नियम नहीं बना सकती, क्योंकि सत्त्वरूपसे, द्रव्यत्वरूपसे सभी पदार्थोंमे द्रव्य प्रत्यासत्ति पाई जा रही है। लेकिन सब-सबके उपादान उपादेय तो नहीं बन जाते। अब रही असाधारण द्रव्य प्रत्यासत्तिकी बात, सो पूर्व आकार भावकी विशेष प्रत्यासत्ति हुई और असाधारण द्रव्यकी प्रत्यासत्ति हुई तो उपादानपनेकी बात वहाँ आती है और वहाँ उपादान उपादेय भाव बनता है।

असाधारणद्रव्यप्रत्यासत्ति व भाव प्रत्यासत्तिका सरल हृदय स्वरूप—जैसे कपड़ा बना तो वहाँ असाधारण द्रव्यप्रत्यासत्ति है उन तंतुवोंमें जिनसे पटका निर्माण हो रहा है और वे तन्तु बिखरे रूपसे जो उनका आकार व्यक्त था उनका परित्याग होता है और उत्तर आकारका ग्रहण होता है तो पटसे पहिले तन्तुओंकी जो स्थिति थी, अवस्था थी वह है भावप्रत्यासत्ति। तो यो असाधारण द्रव्य प्रत्यासत्ति और पूर्वाकार भावरूप विशेष प्रत्यासत्ति ये समुदित होकर उपादान उपादेय भावकी व्यवस्थाके कारण बनते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है और वहाँ उत्पाद व्यय हुआ है सो एक हेतु द्वारा हुआ है। उपादान उपादेय भाव की व्यवस्था इस प्रकार बनती है कि जो अपना स्वरूप छोड दे और न छोडे, इस तरह जो रहता हो वह द्रव्य तो उपादान है अर्थात् पूर्व रूपको तो छोड दे परन्तु उसमें जो असाधारण सामान्य तत्त्व है उसे न छोडे। अतएव वह उपादान कहलाता है और वह तीनो कालोमे पूर्व और अपूर्व रूपसे चलता ही रहता है। जो द्रव्य स्वरूपको छोड दे जैसा कि क्षणिकवादियोंके यहाँ माना गया है कि वह सर्वथा विनष्ट हो जाता है तो वह भी उपादान नहीं बन सकता अथवा जो द्रव्य सर्वथा अपने स्वरूपको न छोडे जैसा कि नित्य अपरिणामवादी कहा करते हैं तो वहाँ भी उपादान नहीं बन सकता है। इस कारण यह मानना होगा कि तंतु विशेष आकार याने आतान वितान विशेष रहित अपने उडिया आकारमें ही रहने वाला तन्तु पटका उपादान नहीं होता जिससे

कि यह सिद्ध कर सकें कि अल्प परिमाणसे ही महापरिमाण घटकी उत्पत्ति होती है और ऐसा सिद्ध करके मृतपिण्डसे घट बने या घटसे कपाल बने, इसका निषेध करे तो इस सिद्धिके लिये दिया हुआ जो अनुमान है, उदाहरण है वह साध्य शून्य होगा।

शङ्काकारके प्रयुक्त 'हेतुत्वात्' हेतुकी विरुद्धता व अनैकान्तिकता होनेसे 'भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते' के सिद्धान्तकी अबाधितता – महापरिमाणसे महापरिमाणके आरम्भकी सिद्धिमें जो हेतु बताया है शङ्काकारने कि कार्य होनेसे अणु परिमाण कारणके द्वारा आरब्ध है कपाल और ऐसा अनुमान बनाकर इस सिद्धान्तमे बाधा देते कि भेद और संघातसे स्कंध उत्पन्न होता है सो शङ्का असङ्गत है। अल्प परिमाणसे भी कार्यकी उत्पत्ति होती है और महा परिमाणसे भी कार्यकी उत्पत्ति होती है शङ्काकारने सिद्धान्तका बाधक जो हेतु बताया है वह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। देखिये ! जब रूई अपने शिथिल अवयवमे पडी हुई है तो वह बडे परिमाण वाली है। रूई कितनी जगह घेरती है उसका परिमाण बहुत विशाल है। लेकिन ऐसे महा परिमाण वाले उस रूई पिण्डसे अल्प परिमाण वाले रूई पिण्डकी उत्पत्ति देखी गई है, अर्थात् जब उस रूईको ही सम्हालकर गांठ बना देते हैं और मशीन द्वारा उसको दाब देते हैं तो वह १६ वां हिस्सा भी जगह पूरा नही घेर सकती। तो यहां देखिये ! कि महा परिमाण तो कारण हो गया और अल्प परिमाण वाले पदार्थ कार्य हो गए तब यह बात कहा रही कि अल्प परिमाणसे ही महापरिमाण वाले कार्यकी उत्पत्ति होती है ? शङ्काकारका प्रयुक्त कार्यत्वात् हेतु विरुद्ध भी है। देखा जाता है कि महापरिमाण वाले पुद्गल आदिक द्रव्य कभी सूक्ष्म रूपसे रह रहे हो वे भी अपने कार्यके आरम्भक होते हैं और कोई स्थूल पर्यायमे रह रहे हो वे भी अपने कार्यके आरम्भक होते हैं। तो जब कार्य अल्प परिमाण वाले पदार्थसे भी बन गए और महा परिमाण वाले पदार्थसे भी बन गए तब [कार्यत्वात् यह हेतु विरुद्ध पड गया तो यहां अनैकान्तिक दोष तो आया ही पर यह देख लीजिए कि साध्यके विरोधके साथ साधन की व्याप्ति भी सिद्ध हो गयी। कार्यत्व हेतु अब महा परिमाण वाले कारणसे रच दिया गया, उससे व्याप्त बन गया। सो यह कहना कि अपने परिमाणसे अल्प परिमाण वाले कारणसे कार्यकी रचना होती है यह मन्तव्य निराकृत हो जाता है, बल्कि यह होता है यहां उल्टा सिद्ध। इस कारण यह अनुमान बाधक नहीं है जो कि शङ्काकारने बताया है। उससे यह सिद्ध होता है कि खपरियोका उत्पाद और घटका विनाश ये दोनो एक हेतुसे ही उत्पन्न होते हैं एक ही तो उपादानसे घटका विनाश और कपालका उत्पादभाव हुआ और मुद्गर आदिक किसी सहकारी कारणके प्रयोग से घट विनाश और कपाल उत्पाद हुआ है। तब यह निर्विवाद सिद्ध है कि एक ही हेतु से कार्यका उत्पाद और पूर्वाकारका विनाश हुआ है।

उत्पाद विनाशकी कथंचित् भिन्नता—अब यहां शंकाकार कहता है कि

कार्यका उत्पाद और पूर्वाकारका विनाश एक ही हेतुसे मान लिए जायें तो इसका अर्थ है कि अब उत्पाद और विनाशमें सर्वथा अभेद ही हो जायगा। क्योंकि उनका कारण एक है और समय भी एक है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उत्पाद और विनाश का कारण एक है और समय भी एक है, इतनेपर भी उत्पादका लक्षण अन्य है और विनाशका लक्षण अन्य है। इस दृष्टिसे उत्पाद और विनाशमे पृथक्त्व सिद्ध होता है, इसी बातको अनुमान प्रयोगसे भी समझिये कि कार्य कारणका उत्पाद विनाश कथञ्चित् भिन्न है क्योंकि भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित है सुख दुःखकी तरह। जैसे मुदगर प्रहारसे घटकी खपरियाँ बन गईं तो उस मुद्गर प्रहारसे ही तो खपरियोका उत्पाद हुआ और उस ही मुद्गर प्रहारसे घटका विनाश हुआ और ऐसा उत्पाद विनाश भी एक ही समयमे हुआ, लेकिन उत्पाद तो कहलाता है खपरियोका और विनाश कहलाता है घटका। उत्पादमें तो खपरियोका सद्भाव मिला और विनाशमे घटका अभाव मिला और विनाशमे घटका अभाव मिला। तो यो भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित होनेके कारण उत्पाद और विनाश कथञ्चित् भिन्न हैं, इस अनुमान प्रयोगमे जिस साधनका उपयोग किया है वह असिद्ध नही है, क्योंकि कार्यका उत्पाद तो कहलाता है स्वरूप लाभ और कारणका विनाश कहलाता है स्वभावच्युति याने स्वभावसे हट जाना। तो जब इन दोनोका लक्षण भिन्न-भिन्न है तो साधन असिद्ध नही कहलाया और यह साधन अनैकान्तिक अथवा विरुद्ध दोषसे दूषित भी नही है। किसी भी एक द्रव्यमे कार्य और कारण रूपसे कथञ्चित् भेद हुए बिना भिन्न लक्षणका सम्बन्ध सम्भव नही हो सकता। लक्षणसे उसमे कुछ फर्क अवश्य ही आयगा तब उत्पाद विनाशका परित्याग किया जा सकता है।

उत्पाद विनाशकी कथञ्चित् अभिन्नता—उत्पाद विनाशकी भिन्नता माननेपर यह भी नही कह सकते कि तब फिर उत्पाद और विनाशमे भेद ही होना चाहिए, क्योंकि उत्पाद और विनाशके सम्बन्धमे कथञ्चित् अभेदका ग्रहण करने वाला प्रमाण मौजूद है और वह इस अनुमानसे सिद्ध होता है प्रकृत उत्पाद और विनाश कथञ्चित् अभिन्न है, क्योंकि उत्पाद विनाशके साथ अभेद रूपसे स्थित जाति और संख्या आदिक स्वरूप वह उत्पाद विनाश हैं। यहाँपर जो हेतु दिया गया है वह असिद्ध नही है, क्योंकि मुद्गर आदिक द्रव्योको छोडकर नाश और उत्पाद बनता नही है। तब देखिये ! घट विनाश और खपरियोका उत्पाद एक मृत् द्रव्यसे ही तो सम्बन्धित रहा। मृत्द्रव्यको छोडकर न उत्पाद समझा जा सकता और न नाश समझा जा सकता। तो पर्यायकी अपेक्षासे नाश और उत्पाद भिन्न लक्षण सम्बन्धी हैं, फिर भी वे नाश और उत्पाद भिन्न ही नही हैं, क्योंकि उनमे जाति आदिक वही अभेद रूपसे पाई जा रही है। सत्त्व द्रव्यत्व पृथ्वीत्व आदिक जातिरूपसे एकत्वकी संख्या स्वरूप बन रहा है वही घट विनाश वही कपाल उत्पाद तो यो जाति दृष्टिसे एकत्व संख्या स्वरूप

है और उत्पाद विनाश क्षणिकरूप, शक्ति विशेषकी, अन्वयात्मकरूपसे उनमें अभेद है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे ऐसा ही समझा जा रहा है। वही ही मृत द्रव्य, असाधारण मृत् द्रव्यका घटाकार रूपसे नष्ट हुआ है और खपरियोंके आकाररूपसे उत्पन्न हुआ है ऐसी सर्वजनोंको प्रतीति रहती है। उसमे कोई बाधक प्रमाण नहीं है। इस सम्बन्धमें दृष्टान्त ले लीजिए कि जैसे एक ही पुरुष अपनेमें सुख और दुःखका परिणमन कर रहा है तो जिस समय सुख परिणमन किया वहाँ सुखका उत्पाद है दुःखका विनाश है अथवा बहुत दुःखी था, अब सुखी हुआ है तो उसे यह प्रत्यभिज्ञान होता है कि जो ही मैं सुखी था वह ही मैं दुःखी होता हूं सो ऐसे दोनोका आधार वह एक पुरुष है। सो ऐसे एक पुरुषकी प्रतीतिकी तरह यहाँ भी एक मृतद्रव्यमें ही उत्पाद विनाशकी बात देखी जा रही है। सो यों उत्पाद और विनाश अभेद रूपसे स्थित जुदी संख्या स्वरूप है अतएव उत्पाद और विनाश कथञ्चित् अभिन्न सिद्ध होते हैं। भेदाभेदरूप उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त प्रत्येक सत् हुआ करते हैं। यदि कोई सत् है तो वह नियमसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। वहाँ कोई सर्वथा नित्य कहे अथवा सर्वथा अनित्य कहे यों यह अभिमत अनेक दोषोसे दूषित हो जाता है। अतः मानना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य है।

उत्पादव्यय ध्रौव्यको अभिन्न माननेपर त्रयात्मक वस्तुके कथनकी सत्यताकी जिज्ञासा—यहाँ शङ्काकार कहता है कि इस तरह जो जब उत्पाद व्यय ध्रौव्य अभेद कर दिए गए तब फिर त्रयात्मक वस्तु कैसे सिद्ध होगी ? जब उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनो एक हैं तो उत्पाद कहा तो ध्रौव्यका ग्रहण हो गया, व्यय कहा तो शेष दोका ग्रहण हो गया, ध्रौव्य कहा तो शेष दोका अभेद हो गया। सो अभेद होने पर वे सब एक कहलाये तो त्रयात्मक वस्तु है यह कथन मिथ्या हो जायगा और यदि त्रयात्मक वस्तुकी सिद्धि चाहते हो तो फिर बतलाओ कि उन तीनोंका तादात्म्य कैसे कहलायगा ? क्योंकि उन तीनोंमे विरोध है। जो उत्पाद है सो व्यय ध्रौव्य नहीं, जो व्यय है वह उत्पाद ध्रौव्य नहीं, जो ध्रौव्य है वह उत्पाद व्यय नहीं। सो इन तीनोंमें परस्पर विरोध है अतएव तादात्म्य नहीं रह सकता और यदि तादात्म्य मानते हो तो वस्तु त्रयात्मक नहीं रह सकेगी।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें कथंचित् भिन्नता व कथञ्चित् अभिन्नता होनेसे वस्तुके त्रयात्मकको सिद्धि—अब उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कथन सङ्गत नहीं है, क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें इनका सर्वथा तादात्म्य नहीं कहा है। लक्षण भेदकी अपेक्षासे उनमें कथञ्चित् भेद है। हाँ सत्त्व निराला नहीं है। सद्भूत वस्तु एक है और उसका यह धर्म है। उनमें कथञ्चित् लक्षणभेद होनेसे भेद

पाया जाता है, इस हीको अनुमान प्रयोगसे सुनो! उत्पाद व्यय ध्रौव्य कथञ्चित् भिन्न है क्योंकि उनमें नाना प्रतीति हो रही है। वह कही नष्ट नहीं हुई है रूपादिककी तरह। जैसे कि एक फलमे रूप, रस, आदिक अनेक कथञ्चित् भिन्न ही तो हैं और इन्हे अनेक दार्शनिक मान ही रहे हैं, क्षणिकवादी भी मानता है और नित्यत्ववादी भी मानता है कि रूप रस आदिक भिन्न-भिन्न हैं। तो जैसे एक फलमे रूप रस आदिक भिन्न माने गए हैं क्योकि उनकी नानारूपसे प्रतीति अस्खलित है इसी प्रकार एक वस्तु मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य भिन्न हैं क्योकि वे भी नाना रूपसे प्रतीत हो रहे हैं। शंकाकार कहता है कि कैसे सिद्ध है उत्पाद और विनाशकी प्रतीति अस्खलित है तब तो इसमे अस्खलितपनेका विशेषण असिद्ध हो जायगा। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि यहाँ नानात्व प्रतीतिमे असिद्ध नही है क्योकि पदार्थ कथञ्चित क्षणिक है यह बात सिद्ध होती है। नाना प्रतीति तब ही तो पदार्थमे बन रही है उत्पाद व्यय सम्बन्धी कि जब इनमें कथञ्चित क्षणिकपना है। पर्यायरूपसे वह उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। और इस ही कारणसे ध्रौव्यरूपसे प्रतीति भी अस्खलित है, क्योंकि सर्वथा क्षणिकपने का भी निराकरण किया गया है, चूंकि विशेष द्रव्य रूपसे क्षणिक नही है इस कारण से ध्रौव्यरूपकी प्रतीति भी स्खलित नही हो रही है अर्थात ध्रौव्य भी जाना जा रहा है और उत्पाद व्यय ध्रौव्य होकर भी वे तीनो परस्पर भिन्न लक्षण वाले हैं। उसका कारण यह है कि उत्पाद आदिक स्वरूप वस्तु वह समग्ररूपसे देखा जाय तो जात्यन्तर रूप है। याने वस्तु को न केवल उत्पाद मात्र कहा जा सकता, न व्ययमात्र, न ध्रौव्य-मात्र, किन्तु वह जात्यन्तर स्वरूप है, इसी तरह उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये कथञ्चित भिन्न लक्षण वाले सिद्ध हो जाते हैं अन्यथा उत्पाद आदिकमे अवस्तुत्वकी प्रसक्ति हो जायगी। वह अवस्तु हो जायगी तो ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य एक पदार्थमे हैं, भिन्न लक्षण वाले हैं और कथञ्चित अभेद रूप हैं, सो ऐसे उत्पाद आदिक ये तीनो परस्पर सापेक्ष हैं।

वस्तुमें केवल उत्पाद या व्यय या ध्रौव्यकी असम्भवता होनेसे वस्तुके उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वकी सिद्धि —वस्तुमे यदि कोई केवल उत्पाद ही माने, व्यय ध्रौव्य न माने तो व्यय ध्रौव्य माने बिना उत्पादकी सिद्धि नही हो सकती। कोई पुरुष केवल व्यय ही माने उत्पाद ध्रौव्य न माने तो उसकी सिद्धि नही। कोई पुरुष केवल ध्रौव्य माने उत्पाद व्यय न माने तो उसकी सिद्धि नहीं है। केवल उत्पाद होता ही नही है, क्योकि वह ध्रौव्य और व्ययसे रहित है। जो पदार्थ ध्रुव नही है और व्ययभूत भी नही है वह तो अवस्तु है। जैसे आकाश पुष्प। इसी प्रकार स्थिति और विनाशके सम्बन्धमे जानना चाहिये। स्थिति भी केवल कुछ नही हुआ करती, क्योंकि वह विनाश और उत्पादसे रहित है। विनाश न हो उत्पाद न हो और फिर

स्थिति हो तो फिर विनाश सम्भव है । इसी प्रकार केवल विनाश भी कुछ नहीं है क्योंकि स्थिति और उत्पत्तिके बिना [illegible] होंगे । जहाँ स्थिति और उत्पत्ति नहीं है वहाँ विनाश भी नहीं है । इस प्रकार सिद्ध होता है कि सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। कथंचित् किसी वस्तुको स्वीकार न करके सर्वथा एकान्त स्वीकार करनेसे वस्तुका सत्त्व ही नहीं रह सकता है । अब कोई शंकाकार कहता है कि यदि उत्पाद व्यय ध्रौव्य, तीनों [illegible] हैं याने उत्पाद भी है व्यय भी है ध्रौव्य भी है तो [illegible] उत्पाद आदिक [illegible] प्रत्येक [illegible] याने वस्तु है [illegible] उत्पादका भी [illegible] है, [illegible] भी [illegible] है और ध्रौव्यका भी [illegible] है । [illegible] और [illegible] हो गया, ध्रौव्य भी [illegible] हो गया । अब इसमें जो ये तीन-तीन धर्म हैं वे भी [illegible] हो गए । तब इस तरह [illegible] धर्ममें धर्मात्मकता [illegible] करते चले जाइये, कहीं विराम न मिलेगा । तो अनवस्था दोष हो जायगा । इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शंका तो इस ही कथनसे निराकृत हो जाती है, देखिये । अब यह कहा गया कि उत्पाद आदिक केवल कुछ नहीं हुआ करते और इस [illegible] अनुमान प्रयोगसे भली भाँति सिद्ध भी कर दिया है तो अब उत्पाद आदिक केवल कुछ भी नहीं है तो उत्पाद आदिक [illegible] कैसे कह दिया जायगा ? वह [illegible] है किन्तु [illegible] है । इस कारण यहाँ अनवस्था दोष नहीं आता । [illegible] [illegible] परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं । परस्पर निरपेक्ष रूपसे कोई समझे तो इस [illegible] अनुमानसे [illegible] उनके [illegible] निराकरण कर दिया गया है। यदि ये धर्मिक धर्म निरपेक्ष [illegible] हों तो वे सत् ही नहीं रह सकते । तो वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है यह [illegible] सिद्ध किया गया । इस विषयमें और सुनो !

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥ ५९ ॥

कलश, मुकुट व स्वर्णके इच्छुकोंको एक घटनामें हुए शोक, प्रमोद व माध्यस्थ्य भावसे उत्पादादि हेतुओंकी सिद्धि—कलश, मुकुट और स्वर्णके चाहने वाले पुरुषोंकी घटके नाश और मुकुटके उत्पाद और स्वर्णकी स्थितिके विषयमें जो [illegible] होती है वह [illegible] हेतु सिद्ध करती है । एक स्वर्णार्थी जो कलश को चाहता था वह तो शोकको प्राप्त हो गया, क्योंकि उस समय कलश टूट गया था जो मुकुटको चाहने वाला था वह प्रमोदको प्राप्त हो गया क्योंकि उसका चाहा हुआ मुकुट तैयार हो रहा था और जो स्वर्णका चाहने वाला था वह माध्यस्थ्य भावको प्राप्त हुआ, क्योंकि उसे कलश रहता तो स्वर्ण रूपमें खरीदता था, मुकुट बन गया तो

भी स्वर्णरूपसे खरीद लेगा। तो इस तरहकी जो ये तीन स्थितियाँ हैं वे हेतुको सिद्ध करती हैं। उनका शोक, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावको प्राप्त हो जानेका कारण 'यह उत्पादव्ययध्रौव्य है। यहाँ समन्त भद्राचार्य उत्पादव्ययध्रौव्यके प्रतीति भेदको एक दृष्टान्त रूपमे उपस्थित करके पुष्ट कर रहे हैं। देखिये ! तीन प्रकारके पुरुष थे—एकको तो स्वर्ण कलशकी जरूरत थी, भाव हो गया कि हम प्रभुमूर्तिका स्वर्णकलशसे स्नान करायेंगे एकका भाव मुकुट चाहनेका था कि मुकुट बाँधकर पूजन करेंगे और दूसरा पुरुष एक स्वर्णको ही खरीदनेके लिए चला तो ये तीनो पुरुष एक स्वर्णकारकी दुकानपर पहुँचे, उस समय वह स्वर्णकार कलशको तोडकर मुकुट बना रहा था। वे कलश बहुत दिनोंसे रखे हुए थे, सोचा कि ये बिकते नही है इनके मुकुट बन जायेंगे तो ये बिक जायेंगे। वह मुकुट बना रहा था, वे तीनो पुरुष वहाँ पहुँचे तो उनमेसे कलश चाहने वाला पुरुष तो शोकको प्राप्त हो गया। उसने सोचा कि यदि मैं आध घण्टा पहिले यहाँ आता तो स्वर्णकलश तैयार मिलते कही दूसरी जगह स्वर्ण कलश ढूंढेंगे तो देर लगेगी और बनवाई भी बहुत लगेगी, उसे रज हुआ। जिसको मुकुटका भाव था वह खुशी मानता था। देखो ये मुकुट तैयार ही हो गए हैं। अब न मुझे विलम्ब लगेगा न विशेष व्यय भी होगा। किन्तु जो स्वर्णको चाहने वाला था, उसे न हर्ष है न विषाद। स्वर्णपना पहिले भी था अब भी है। तो इस प्रकारकी जो ये तीन प्रकारकी स्थितियाँ मनुष्यको प्राप्त हुई इन स्थितियोके कारण हैं। बिना कारणके ऐसी विषम स्थितियाँ नही हो सकती हैं। स्वर्णकलशको चाहने वालेको जो शोक हो गया वह घटके नाशके कारणसे हुआ याने स्वर्ण कलश वहाँ टूट गया था उस कारणसे इसका विषाद हुआ और मुकुट चाहने वाले पुरुषको जो प्रमोद हुआ वह मुकुटके उत्पादके कारणसे हुआ। उसे चाहिये था मुकुट सो अब तैयार मिल ही गया। स्वर्ण चाहने वाला पुरुष वहाँ माध्यस्थ्य भावको जो प्राप्त हुआ उसका कारण है स्वर्णकी स्थिरता, स्वर्णत्व पहिले भी था अब भी है। इस कारण उसके माध्यस्थ्य भाव है। तो अब ये तीन स्थितियाँ सहेतुक हो रही है। तो वह हेतु और क्या कहलायेगा ? यही कहलायेगा कि वहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य हुआ है ! यदि उन तीनो पुरुषोके ये शोक, प्रमोद और माध्यस्थ्य निर्हेतुक हो जाये अर्थात् वहाँ कोई हेतु ही न हो तो विषाद आदिक उत्पन्न हो ही नही सकते।

शोक प्रमोद व माध्यस्थ्यके अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारणोका विश्लेषण— कोई सोचे कि विषाद आदिकके कारण कुछ नही हैं किन्तु पूर्वमे विषाद आदिककी वासना थी उस वासनासे ही विषाद आदिक बन गए तो सुनो ! ऐसी कल्पना करनेमे विषाद आदिककी उत्पत्ति सिद्ध नही की जा सकती। क्योकि पहिले जो वह वासना हुई है विषाद आदिककी तो पहिलेके विषाद आदिकको निमित्त मान लेनेपर भी विषाद आदिकका नियम सम्भव नही हो सकता। शङ्काकार कहता है कि जो विषाद

आदिककी भावना हुई है वह एक ज्ञापक कारणके नियमसे हुई है। इस शङ्काके उत्तरमें स्याद्वादी कहते हैं कि फिर तो वह वासना प्रबोध रखने वाला जो निमित्त है तो वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही तो कहलाया और वह ही परम्परासे शोक आदिकका कारण बन गया। तो यह तो बहिरङ्ग कारण है, परन्तु अन्तरङ्ग कारण तो मोहनीय प्रकृतिका विशेष उदय है। वे तीन पुरुष जो शोक विषाद और माध्यस्थको प्राप्त हुए हैं तो शोक करने वालेके शोक प्रकृतिका उदय था और उसे अभिलाषा थी स्वर्णकलश की, वह मिला नहीं। उसे अनुराग था इस कारण उसके विषाद उत्पन्न हुआ तो इस पुरुषके जो विषाद होता है उसमें अन्तरङ्ग कारण मोहनीय प्रकृतिका उदय है और बहिरङ्ग कारण चाही हुई पर्यायका होना न होना है। उन्हींका ही वासना यह नाम धर लीजिए, पर केवल नाम मात्र दूसरा रख लेनेसे वस्तु स्वरूप न बदल जायगा। स्याद्वादी जन जो भाव मोह हो रहे हैं उनको ही वासना स्वभाव मानते हैं। तब इस तरह सिद्ध है कि लौकिक जनोंके जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यके कारण शोक प्रमोद, माध्यस्थ हुआ है तो ये परिणतियाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्यके प्रतीति भेदको सिद्ध कर रहे हैं। और भी एक अलौकिक पुरुषोंका उदाहरणसे समझ लीजिए कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंमें भेदकी प्रतीति होती है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥६०॥

एक अलौकिक दृष्टान्त द्वारा वस्तुके त्रयात्मकत्वकी सिद्धि—जैसे कोई पुरुष दूध मात्रके ग्रहणका व्रत लिए हुए है कि मैं केवल दूध ही खाऊंगा, ऐसा जिसका व्रत है वह दही नहीं खाता, और जिसका केवल दहीके ग्रहणका ही नियम है वह दूध नहीं खाता। और जिसका अगोरसका व्रत है याने दूध दही दोनोंको न खाऊंगा, इन दोके अतिरिक्त अन्य पदार्थका ही ग्रहण करूंगा वह दूध और दही दोनोंका ही ग्रहण नहीं करता। जब ऐसी स्थिति इन व्रतीजनोंमें देखी जा रही है तो उससे भी यह सिद्ध है कि तत्त्व त्रयात्मक होता है तब ही तो दूध दही और गोरस इन तीनोंकी प्रतीति बुद्धिमें आ रही है। इस कारिकामें एक अलौकिक दृष्टान्त दिया गया है जिस दृष्टान्तसे प्रतीतिका नानापन सिद्ध हो रहा है। उत्पाद व्यय और ध्रौव्यको जो सिद्ध करता है वह दृष्टान्त इस प्रकार है कि जिन पुरुषोंने दहीके ही खानेका व्रत लिया है वे दूधका परित्याग करते हैं और जिन्होंने दूधके ही खानेका व्रत लिया है [illegible] त्याग करते हैं और जिन्होंने अगोरसके खानेका व्रत लिया है याने कुछ भी गोरस न हो अन्य कोई चीज हो वही खावेंगे, ऐसा जिन्होंने व्रत लिया है वे दूध और दही दोनोंका

परित्याग करते हैं तो उनकी यह प्रक्रिया इस बातको सिद्ध करती है कि देखो वहाँ वह वस्तु दूधपनेसे तो नष्ट हो रही है और दही स्वरूपसे उत्पन्न हो रही है फिर भी गोरस स्वभावसे अवस्थित ही है। जैसे किसीने यह व्रत लिया कि मैं दूध ही खाऊंगा तो ऐसे व्रतको ग्रहण करने वाले पुरुषके दधिका परिहार हो रहा है लेकिन दधिके उत्पादके समयमें भी दूधका सत्त्व बन जाय तो वह दहीका परिहार कैसे कर सकता है ? जिस पुरुषने ऐसा नियम किया है कि मैं दही ही खाऊंगा तो ऐसा व्रत स्वीकार करने वाले पुरुषके देखा जा रहा है कि वह दूधका परित्याग कर देता है लेकिन दूधमें भी दधिका सत्त्व हो जाय तो वह दूधका परित्याग कैसे कर सकेगा ? इसी प्रकार जिसने यह नियम लिया है कि मैं अगोरस ही खाऊंगा तो ऐसा व्रत अंगीकार करने वाले पुरुषके दूध और दही दोनोंका परिहार देखा जा रहा है, लेकिन उस गोरसमें जो कि दोनों ही अवस्थाओंमें अनुस्यूत है ऐसे गोरसमें यदि दही और दूधका अभाव हो तो दोनोंका परित्याग कैसे घटित हो सकता है ! किन्तु घटित देखा ही जा रहा है कि उस उस व्रतको लेने वालेके अन्य अन्य वस्तुका परिहार हो ही रहा है। इससे सिद्ध है कि वस्तु त्रयात्मक है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। इस तरह वस्तु अनन्तात्मक सिद्ध होती है।

अनन्तात्मक वस्तुमें अनन्तात्मकत्वकी अविरुद्धता—अनन्तात्मक वस्तु सिद्ध होनेपर भी यह अनन्तात्मकता वस्तुमें विरुद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्पाद आदिक प्रत्येकमें अनन्तोंसे व्यावृत्तिकी अपेक्षासे उत्पद्यमान और विनश्यमान तथा स्थिर होते हुए यों तीन कालमें रहने वाले जितने भी पदार्थ हैं उनसे भेदको प्राप्त होते हुए इन प्रत्येक उत्पाद आदिकमें विवक्षित वस्तुमें परमार्थसे अनन्त भेदोंकी उपपत्ति होती है। यहाँ यह बात दिखाई जा रही है कि वस्तु तो अनन्तात्मक है और वह यों अनन्तात्मक है कि उसमें जितनी शक्तियाँ हैं उन समस्तके उत्पाद व्यय है और उन-उन प्रति विशिष्ट उत्पादव्ययोंसे अनेक भेद होते हैं वे सब विवक्षित वस्तुमें हैं, अतः वहाँ अनेक भेदोंकी उपपत्ति हो जाती है। जो लोग पररूपको व्यावृत्ति मानते हैं और है भी ऐसा, लेकिन स्वरूपका जो सद्भाव नहीं मानते और शब्दका वाच्य केवल अन्यापोह मानते हैं वहाँ स्वरूपसे विरोध आता है लेकिन पररूपकी व्यावृत्ति होना भी तो वस्तुके स्वभावकी सिद्धि करता है। यदि पररूपकी व्यावृत्ति अवस्तु स्वभावरूप हो जाय, वस्तुका स्वभाव न रहे तो समस्त पदार्थोंमें सांकर्य दोष हो जायगा अर्थात् सभी पदार्थ सर्वरूप हो जायेंगे। तब कोई पदार्थ अपना अस्तित्व न रख सकेगा। इसी प्रकारसे अब त्रयात्मक सिद्ध किया जा रहा है और अनन्तात्मक सिद्ध किया जा रहा है तो वहाँ नित्य और अनित्य एवं उभयात्मक होना, यह भी विरुद्ध नहीं पड़ता है। जब वस्तुको स्थितिस्वरूप व्यवस्थित किया जा रहा है, तब वहाँ कथञ्चित् नित्यपने

की सिद्धि होती है और जब विनाश एवं उत्पाद स्वभावरूपसे प्रतिष्ठित किया जा रहा है तब कथञ्चित् अनित्यपनेकी सिद्धि होती है। इस प्रकार यह समीचीन ही कहा गया है कि समस्त पदार्थ कथंचित् नित्य ही हैं कथंचित् अनित्य ही हैं।

वस्तुके नित्यत्व व अनित्यत्वके सम्बन्धमे सप्तभङ्गी प्रक्रिया— द्रव्य दृष्टिसे पदार्थ नित्य हैं याने जो उसका सत्त्व है असाधारण धर्म है, स्वभाव है वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। नष्ट होकर जायगा कहाँ ? जो सत् है उसका समूल नाश कैसे सम्भव है ? अतएव द्रव्यदृष्टिसे पदार्थ नित्य ही है फिर भी पदार्थ क्या है वह जिसमें परिणमन ही कुछ न हो। वह अर्थ क्रियाकारी न होनेसे अवस्तु होगा। पदार्थ प्रतिक्षण परिणमता ही रहता है अतएव पर्याय दृष्टिसे पदार्थ अनित्य ही है। इसी प्रकार कथञ्चित् उभय ही है और कथञ्चित् अवक्तव्य ही है। तब द्रव्य दृष्टि और पर्यायदृष्टिके क्रमसे विवक्षा करके निहारा जाता है तो प्रतीत होता है कि वस्तु नित्य स्वरूप है और जब द्रव्यदृष्टि और पर्याय दृष्टिके विषयोंको एक साथ बोलनेका यत्न किया जाता है तो एक साथ यह बोला नहीं जा सकता। इस कारण इस अपेक्षासे वस्तु अवक्तव्य ही है। जब स्वरूप दृष्टि और एक साथ कहनेमें अशक्य है इस प्रकारकी दृष्टिका क्रमसे अर्पित किया जाता है उस समय प्रतीत होता है कि वस्तु कथञ्चित नित्य अवक्तव्य ही है। जब पर्याय दृष्टि और एक साथ कहनेकी अशक्यताकी दृष्टि करके वस्तुको निहारा जाता है तब प्रतीत होता है कि वस्तु कथञ्चित अनित्य अवक्तव्य ही है। इस प्रकार जब क्रमसे स्वरूप दृष्टि और पर्याय दृष्टिकी विवक्षा की जाती है और साथ ही एक साथ कहनेमें अशक्य है इस दृष्टिसे भी निरखा जाता है उस समय प्रतीत होता है कि वस्तु स्यात नित्य अनित्य होकर अवक्तव्य ही है। इस तरह नित्यत्व और अनित्यत्वके विषयके सम्बन्धमें सप्तभङ्गीकी व्यवस्थाकी योजना नय और प्रमाणकी अपेक्षासे समझ लेना चाहिए। जैसे कि सत्त्व और असत्त्वके विषयमें सप्तभङ्गीका वर्णन किया गया कि वस्तु स्वतः सत् है पररूपतः असत् है। क्रमसे दोनों दृष्टियोंमें सत् असत् है एक साथ दोनोंको कहा नहीं जा सकता अतएव अवक्तव्य है और फिर इसीके और संयोगी भङ्ग लेकर जैसे सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया वहाँ बनी थी तथा वस्तु अद्वैत मात्र है अथवा वस्तु पृथक्त्व स्वरूप है इन दोनों विषयोंको लेकर सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया बनायी गई थी। तथा इसी प्रकार वस्तु एक है और पर्याय दृष्टिसे वस्तु अनेक है यों एक और अनेकके विषयमें सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया लगाई गई थी इसी प्रकार यहाँ वस्तु नित्य है एवं अनित्य है ऐसे दो विषयों को लेकर यहाँ सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया लगाई गई है और यों स्याद्वाद नीतिके अनुसार एक बहुत बड़ा विवाद समाप्त किया गया है, जो कि लौकिक और अलौकिक जनोंके हृदयमें प्रकृत्या यह प्रश्न घूमता है कि वस्तु क्या क्षणभंगुर ही है अथवा वस्तु क्या

नित्य अपरिणामी ही है, इसकी सिद्धि यहाँ की गई है—स्याद्वाद नीतिके अनुसार वस्तु कथञ्चित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है।

स्याद्वादनीतिके निर्णयसे आत्महितका लाभ—उक्त निर्णयमें आत्महित का एक बडा उपाय दृष्टिमे आता है और किया जा सकता है। प्रत्येक जीवके उपयोग में यह आकाक्षा आती है कि मेरेको ऐसी शान्ति प्राप्त हो जिसमें कभी बाधा न आये ऐसी अभिलाषा रखते हुए भी विभिन्न दार्शनिक अपने अपने एकान्तके पथपर चलते हुए इस शान्तिको प्राप्त नही कर सकते, किन्तु जब स्याद्वाद नीतिके अनुसार वस्तु स्वरूपकी व्यवस्था बनाई जाती है तब हमें अपनी शान्ति चाहिए, अपना कल्याण करना है यह भाव भी बनता है और उसका उपाय भी बनता है। जो लोग आत्माको सर्वथा नित्य मानते हैं उनको मोक्षकी आवश्यकता ही क्यो समझमे आयगी, वह तो नित्य अपरिणामी है, उसमे कोई परिणमन ही नही अवस्थायें ही नहीं बनती। वह दु.खी ही नही है। जिसमें दु ख परिणति आये सो दु.ख परिणतिको मेटे। सुख शाति से उपायमे चले तो सर्वथा अपरिणामी नित्य माननेके सिद्धान्तमे आत्मकल्याणका उपाय और उसकी आवश्यकता भी विदित नही हो पाती इसी प्रकार जो क्षणिक एकान्तका पक्ष लेते हैं उन्हे भी मोक्षकी क्यो आवश्यकता होगी ? प्रत्येक जीव एक क्षणको उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है। अब वहा बध किसका मोक्ष किसका जो करे सो भोगे। जब यह बात क्षणिकवादमे बन ही नहीं सकती तब व्रत तपश्चरण ज्ञानार्जन आदिकका परिश्रम किसलिए किया जाय ? तो सर्वथा क्षणिकवादके पक्षमे भी आत्म कल्याणका कोई मार्ग नहीं सूझ सकता है, किन्तु जब यह परखा जाता है कि मैं आत्मा द्रव्य दृष्टिसे शाश्वत हू, कभी भी मेरा अभाव नही हो सकता तो जब मेरा अभाव ही नही हो सकता, सदाकाल ही मैं रहूगा तो इस स्थितिमें एक यह जिज्ञासा होती ही है कि मुझे आगे किस प्रकारसे रहना चाहिए। किसमे मेरी भलाई है ? तब वहां यह विदित होता है विचार करनेके बाद कि मुझे समस्त विकारोसे रहित केवल अपने ज्ञानानन्द स्वरूपके विकासमें ही रहना चाहिए, इसमे ही हमारी शाश्वत शान्ति है। और ऐसी शान्ति हमें करना चाहिए, क्योकि मैं प्रतिसमय परिणमता रहता हू, अवस्थायें मेरी बनती हैं। ये जो पशु पक्षी, कीट नर आदिक अवस्थायें दिखती हैं ये सब जीवकी परिणतियाँ ही तो हैं, इनमें दु ख भरा हुआ है, इनसे हमे मुक्त होना है। अब तो मोक्षकी आवश्यकता भी विदित हुई और मोक्षका यह उपाय भी करने लगे, क्योकि वह एक ही जीव है। और अज्ञान अवस्थाओको छोड कर ज्ञान अवस्थामे आ सकता है। तो यो जब स्याद्वाद नीतिसे वस्तु स्वरूपकी बात जान ली जाती है तो आत्मकल्याणका वहां उपाय भी दृष्टिमे आता है और ऐसा उपाय कर भी लिया जाता है। जिन पुरुषोने स्याद्वाद नीतिका आश्रय करके वस्तुतत्त्व

को यथार्थ जाना और इस सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे पर वस्तुओंमें उपेक्षा की, निज अंतःस्वरूपमें अपने उपयोगको लीन किया वे पुरुष सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर मोक्ष अवस्थाको प्राप्त हुए। वे पूज्य हैं, आदर्श हैं, उनका ध्यान करके हम आप भी उसी मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा पाते हैं। यह सब स्याद्वाद न्यायका महत्त्व है, ऐसा जानकर वस्तु स्वरूपका निर्णय स्याद्वाद नीतिके अनुसार करके अपने हितका उपाय कर लेना चाहिये।

आप्तमीमांसा–प्रवचन अष्टम भाग [अवशिष्ट] समाप्त

सहजानन्द-शास्त्रमाला

की

प्रबन्धकारिणी समिति

पुस्तक मगाने का पता :

श्री सहजानन्द-शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी सदर मेरठ (उत्तर-प्रदेश)